ISSN 2319–5304

National Mission for Manuscripts

कृति रक्षण

राष्ट्रीय पाण्डुलिपि मिशन की द्वैमासिक पत्रिका

Kriti Rakshana

A bi-monthly publication of the National Mission for Manuscripts

Vol. 7 nos. 5 & 6
April – July, 2012

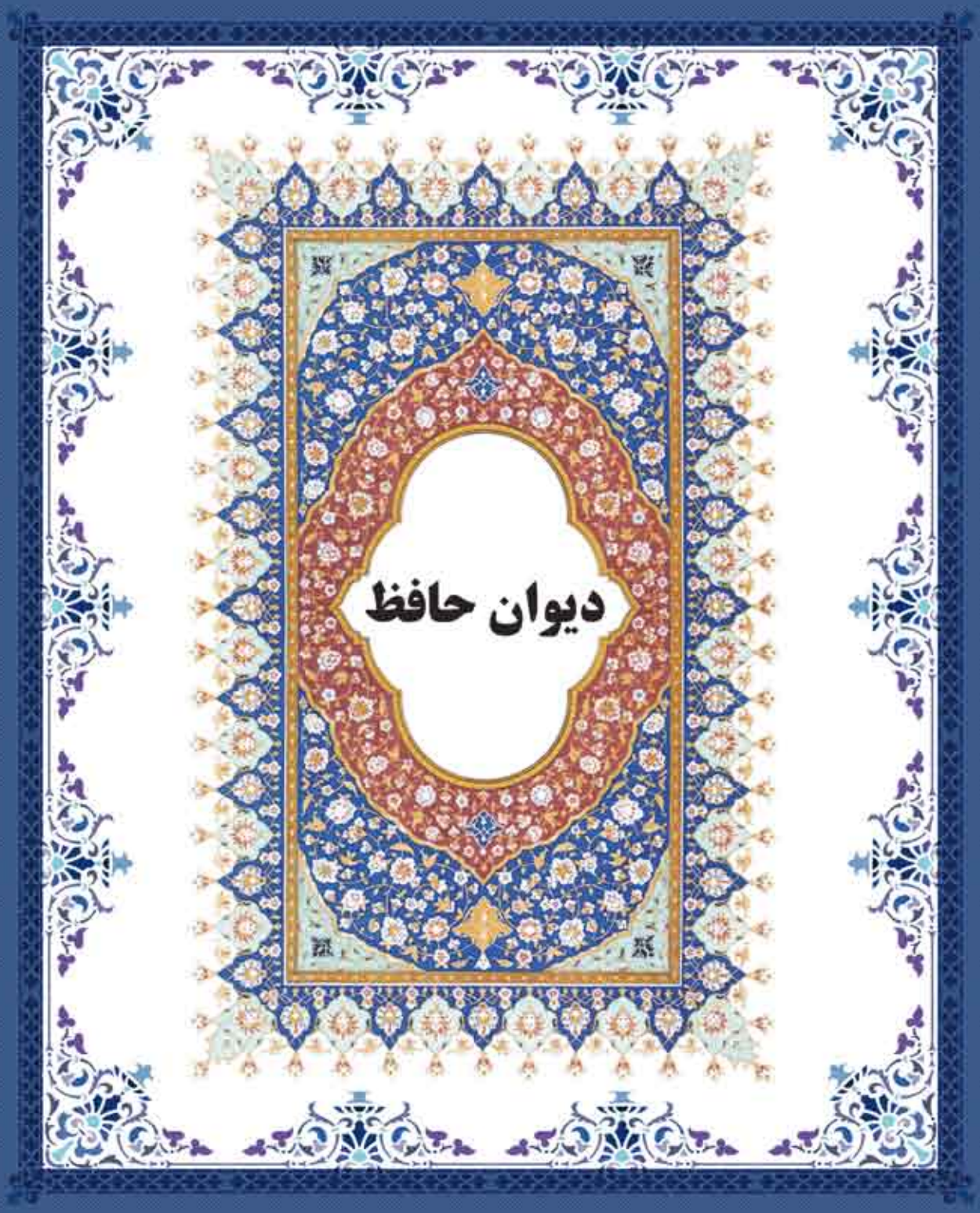

"One of our major misfortunes is that we have lost so much of the world's ancient literature – in Greece, in India and elsewhere.... Probably an organised search for old manuscripts in the libraries of religious institutions, monasteries and private persons would yield rich results. That, and the critical examination of these manuscripts and, where considered desirable, their publication and translation, are among the many things we have to do in India when we succeed in breaking through our shackles and can function for ourselves. Such a study is bound to throw light on many phases of Indian history and especially on the social background behind historic events and changing ideas."

Pandit Jawaharlal Nehru, *The Discovery of India*

Editor
Mrinmoy Chakraborty

Publisher:
Director, National Mission for Manuscripts
11 Mansingh Road
New Delhi – 110 001
Tel: +91 11 23383894
Fax: +91 11 23073340
Email: director.namami@nic.in
Website: www.namami.org

Designing and Printing: Macro Graphics Pvt. Ltd.
www.macrographics.com

Cover Image:
A folio from *Diwan-i-Hafiz*, a 16th Century manuscript, preserved at Rampur Raja Library, Uttar Pradesh

The views, opinions and suggestions expressed in the *Kriti Rakshana* are strictly those of the authors and not necessarily those of the editor or the publisher.

निदेशक की कलम से

भारतीय संस्कृति की विविधता में आदिवासी एवं जनजातीय समूहों का महत्वपूर्ण योगदान है। आम तौर पर यह माना जाता है कि इन समूहों में शिक्षा का अभाव रहा है इसलिए इनके पास लिखित साहित्य उपलब्ध नहीं है। राष्ट्रीय पाण्डुलिपि मिशन ने अत्यधिक सूक्ष्मता से छानबीन की और इसमें उसे जनजातीय पाण्डुलिपियों के रूप में साहित्यिक लिखित परम्पराओं की जानकारी मिली । यह सुखद आश्चर्य का विषय है क्योंकि आदिवासी एवं जनजातीय संस्कृति के साथ लिखित परम्परा का सम्बन्ध प्रसिद्ध नहीं है। राष्ट्रीय पाण्डुलिपि मिशन के अथक प्रयत्न से अनेक जनजातीय पाण्डुलिपियों की सूचना कई स्थानों में उपलब्ध हुई है। इनमें से प्रमुख हैं, मिज़ोरम की चकमा जनजाति, त्रिपुरा की मोग जनजाति, आंध्रप्रदेश के गोंड आदिवासी और असम की कतिपय अल्पज्ञात जनजातियाँ।

अप्रैल–जुलाई 2010 के कृतिरक्षण में चकमा जनजाति की पाण्डुलिपियों पर सर्वप्रथम लेख प्रकाशित हुआ था। जनवरी 2012 में मिशन ने कमलानगर कालेज में, जो मिजोरम के लुंगलई जिले में स्थित है, पाण्डुलिपि शास्त्र एवं लिपि शास्त्र की कार्यशाला आयोजित की। इस कार्यशाला के माध्यम से वहाँ के लोगों को चकमा लिपि सीखने का अवसर मिला जो बंगाली लिपि और रोमन लिपि की लोकप्रियता के कारण लुप्त होती जा रही है।

त्रिपुरा राज्य की मोग जनजाति वहाँ के मूल निवासियों में छठी सबसे बड़ी जनसंख्या की जनजाति है। मोग पाण्डुलिपि ताड़पत्र एवं भोजपत्र पर उपलब्ध होती है। इनमें मोग उत्सवों एवं उनके द्वारा प्रवर्तित अनुष्ठानों का विवरण होता है। मोग लोग अधिकतर बौद्धमत का अनुसरण करते हैं। लेकिन दुर्भाग्य की बात है कि इन पाण्डुलिपियों की लिपि और भाषा को जानने वाले बहुत थोड़े लोग रह गये हैं। मिशन, त्रिपुरा विश्वविद्यालय में अवस्थित अपने पाण्डुलिपि संसाधन केन्द्र और पाण्डुलिपि संरक्षण केन्द्र के माध्यम से, मोग भाषा एवं लिपि को पुनरुज्जीवित करने का प्रयत्न कर रहा है। इसमें हमें मोग जनजाति के स्थानीय सम्मानित वयोवृद्धों की सहायता मिल रही है। मोग जनजाति के अतिरिक्त कॉक–बरॉक भाषा में लिखित पाण्डुलिपियाँ भी उल्लेखनीय हैं।

भारत के छः राज्यों में गोंड जनजाति के लोग रहते हैं। यह राज्य हैं महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, उत्तर प्रदेश, ओडीसा और आंध्रप्रदेश। गोंडवाना क्षेत्र का सुविकसित इतिहास है, यह इस क्षेत्र के निवासियों सें प्रतिफलित होता है। सन् 1928 ईसवी में मध्यप्रदेश में एक प्रकार की गोंडी लिपि की जानकारी मिली थी। आंध्रप्रदेश के गुंजल नामक स्थान में जो अदिलाबाद जिले का हिस्सा है, 100 साल पुरानी एक अन्य प्रकार की गोंडी लिपि आज भी जीवित है। इस लिपि में गोंड भाषा में लिखित पाण्डुलिपियाँ उपलब्ध होती हैं। खेद का विषय है कि आज इस लिपि को पढ़ने वाले सिर्फ चार लोग जीवित हैं। राष्ट्रीय पाण्डुलिपि मिशन ने हैदराबाद के प्रोफेसर जयधीर थिरुमल राव की सहायता से एक कार्यशाला का आयोजन किया, जिसमें नौजवानों को गुंजल गोंड लिपि सिखाने का कार्य किया गया। हमें आशा है कि मिशन के इन प्रयत्नों से गोंड जनजाति की पाण्डुलिपियों को पूर्णतः लुप्त होने से बचाया जा सकेगा।

पूर्वोत्तर भारत के ताई समूह सें अहोम् एतोन, खामती, खामयांग, काबो, फाके और तुरुंग लोग आते हैं। इनमें से एतोन, खामती और फाके लोगों के लिए ताई भाषा आज भी मातृभाषा है। इस भाषा में साँचीपत्र पर लिखित पाण्डुलिपियाँ ताई ग्रामों और ऊपरी असम के बौद्ध मठों में उपलब्ध होती हैं। इन पाण्डुलिपियों के माध्यम से असम प्रान्त में अहोम राज्य के 600 वर्ष के इतिहास की जानकारी मिलती है। इस भाषा एवं इसमें निबद्ध पाण्डुलिपियों के महत्व को स्वीकार करते हुए मिशन ने मोरनहाट में एक पाण्डुलिपि संसाधन केन्द्र की स्थापना की है। यह केन्द्र ताई अध्ययन एवं शोध संस्थान में अवस्थित है। हमें आशा है कि इस केन्द्र के माध्यम से ताई पाण्डुलिपियों को न केवल सूचीबद्ध किया जा सकेगा बल्कि उनका सांख्यिकीकरण एवं प्रकाशन भी हो सकेगा। इस माध्यम से इस क्षेत्र के इतिहास एवं वहाँ की संस्कृति को संरक्षित करने में सहायता मिलेगी।

अरुणाचल प्रदेश की मोंपा जनजाति बौद्ध मतावलम्बी है। प्रत्येक मठ, स्तूप और यहाँ तक कि घर में भी पाण्डुलिपियाँ उपलब्ध होती हैं। इस जनजाति के लोग कागज़ बनाने सें कुशल हैं। उनकी पाण्डुलिपियाँ हाथ से बने कागज़ पर लिखी जाती हैं। यह कागज़ मौसम से आसानी से प्रभावित नहीं होता। मोंपा जनजाति के अतिरिक्त अरुणाचल प्रदेश की अन्य जनजातियों में भी पाण्डुलिपियाँ उपलब्ध होती हैं। प्रत्येक जनजाति की लिपि और भाषा अलग– अलग है। आधुनिक शिक्षा में शिक्षित युवा पीढ़ी के लिए इन भाषाओं एवं लिपियों को जीवित रखना बहुत बड़ी चुनौती है। राष्ट्रीय पाण्डुलिपि मिशन इस चुनौती के प्रति सजग है और अपने अनेक कार्यक्रमों के माध्यम से इस कार्य को करने में सतत यत्नशील है।

प्रो. दीप्ति एस. त्रिपाठी
निदेशक, राष्ट्रीय पाण्डुलिपि मिशन

From the Director

The mention of tribal literature in India generally conjures up an oral tradition. It is rarely that we think of written tradition in this context. There is also a misconception that writing amongst tribal people is a modern day phenomenon. However, the National Mission for Manuscripts (NMM) has, on closer scrutiny, discovered several tribal literary traditions in the form of manuscripts which are rich in content and shed light on an area which has long been considered to be non-existent. NMM's focused efforts in unearthing the manuscripts wealth of this country has helped in identifying several tribal groups that possess written literature in the form of manuscripts. Some of these tribes are Chakmas of Mizoram, Mogs of Tripura, Gonds of Andhra Pradesh and less known tribes of Assam.

In its issue of April-July 2010, an article on Chakma manuscripts, which was the first write-up of its kind, was published. In January 2012, a workshop on Manuscriptology and Palaeography was organized by Kamla Nagar College in Lunglei district of Mizoram. The 10-day workshop helped people in learning the Chakma script which is fast loosing users in competition with the Bengali and the Roman scripts.

Mog constitutes the sixth largest indigenous people in the State of Tripura. Mog manuscripts are available in palm leaf and birch bark. These are related to Mog festivals, rituals and Buddhism as followed by the Mog people. Unfortunately, there are not many people, who know the script or the language in which these manuscripts are written. The Mission on its part has been trying through its Manuscript Resource Centre and Manuscript Conservation Centre at Tripura University to revive the tradition of Mog language and script by involving leaders of the community in saving both from being lost forever. Besides the Mog people we have reference to manuscripts written in Kok-Borok, language.

The Gond people are spread in six States of India i.e. Madhya Pradesh, Maharashtra, Chhatisgarh, Odisha, Uttar Pradesh and Andhra Pradesh. Gondwana history is quite colourful and is reflected in the people of the tribe. In the year 1928, a particular type of Gondi script was found in Madhya Pradesh. Another type of Gondi script of around 100 years antiquity is still alive in the village Gunjala in Adilabad district of Andhra Pradesh. There are manuscripts written in Gond language in this script. But the problem is, there are only four persons alive who are able to decipher this script. Recently, the Mission in association with Prof. Jaydhir Thirumal Rao conducted a workshop in Hyderabad to help young scholars in learning Gunjala Gond script. This is an important step towards saving the script as well as the manuscripts of the Gond people from total extinction.

Tai groups of North East India are known as Ahom, Aiton, Khamyang, Khamti, Kabow, Phake and Turung. Of these groups, Aitons, Khamti and Phake still retain the Tai language as their mother tongue. A large number of rare and valuable Tai manuscripts written on Sanchi tree bark are lying scattered in the Tai villages and Buddhist Monasteries of upper Assam. These manuscripts contain information on the six hundred years rule of the Ahom people in Assam. Taking note of the importance of the language of the border area NMM has established a Manuscript Resource Centre at Institute of Tai Studies and Research, Moranhat in Assam. Through this Centre the Mission hopes not only to document and conserve but also to digitize and publish the Tai manuscripts. This would help in a better understanding of the history and culture of the region.

Monpa tribe of Arunachal Pradesh is Buddhist in faith. Every Gompa (monastery), stupa or household is in possession of manuscripts. The Monpa people are adept at making paper also. Their manuscripts are written on indigenous hand-made paper which is unique. These papers are tough and can withstand the toughest weather conditions. It is interesting to see that besides the Monpa tribe other tribes of the State also have manuscripts in their possession. The scripts vary from one tribe to another and it is a challenge for the young educated people of the tribe as also others to keep the tradition of these scripts and languages alive. The NMM is aware of this challenge and is trying to address the issue in a positive and effective manner.

Prof. Dipti S. Tripathi
Director, National Mission for Manuscripts

Editorial

In *The History and Culture of the Indian People, The Vedic Age,* historian R.C. Mazumdar says, "It is a well-known fact that with the single exception of *Rājataraṅgiṇī* (History of Kashmir), there is no historical text in Sanskrit dealing with the whole or even parts of India. It is also said, "Kashmir alone has the advantage of possessing a written history from the earliest times. "(*History and Culture of the Indian People, The Classical Age*, Bombay, Bharatiya Vidya Bhavan, p. 131). This notion: absence of historiography in pre-modern India is not accepted by many a scholar like Prof. Michael Witzel (*On Indian Historical Writing: Role of Vamsavali*, Journal of the Japanese Association for South Asian Studies 2, 1990, 1-57): Prof. Girin Phukon's article on Tai manuscripts incorporated in this issue points towards another direction.

Assam is the only region in India which had a rich tradition of history writing. Burunjis, as they are called, contain historical account of Ahom rule in Assam starting from 1228 A.D. Kalhaṇ's *Rājataraṅgiṇī* of early 12th century is older one; but continuity, number of manuscripts written and information available in burunjis has given Assam this prestigious position. Hundreds of such burunjis are scattered in the poor households of Upper Assam. The presence of a well-established tradition of history writing in Assam is an evidence in favour of Prof. Witzel's assertion. But the condition in which they are available gives weight to another well-known fact that our society is not history conscious. Had it been not so, Tai manuscripts, which bear the testimony of 600 year Ahom rule in Assam would not have been left unnoticed and unexplored. Therefore, it is sheer ingratitude towards our forefathers to say that historiography was absent in India. Rather, it is our negligence and apathy which are pushing history into oblivion. Dr. Phukon's article is an evidence in favour of this assertion.

Editor

Contents

1. Tai Manuscripts: An Overview 4
Dr. Girin Phukon

2. बङ्गाल के शिरोमणि गदाधर भट्टाचार्य के गुरु हरिराम तर्कवागीश की पाण्डुलिपियाँ 11
प्रो0 हरेराम त्रिपाठी

3. अभिज्ञानशाकुन्तल के पाठविचलन का सम्भावित क्रम 16
प्रो0 वसन्तकुमार म0 भट्ट

4. *Case Study:* 21
Problems and Process of Conservation of *Diwan-i-Hafiz*
Prof. S.M. Azizuddin Husain

5. The Illustrated *Giradhara-Ramayana* 24
Manuscript from Vadodara
Prof. M. L. Wadekar

6. Towards Devising a Saner Manuscripts Policy 27
Dr. Shayesta Khan

7. Institution in Focus: 31
Kuppuswami Shastri Research Institute, Chennai
Dr. J. Lalitha

Tai Manuscripts: An Overview

Dr. Girin Phukon

Tai is a race of people of Mongoloid origin who inhabit in the large tracts covering Southeast Asia and East Asia extending from Northeast India and Myanmar in the west to Laos and Vietnam in the east and from Yunnan of China in the north to Thailand in the south. Tais are found in innumerable groups and sub-groups under various local names such as Shan, Thai, Lao, Dai, Nung, Bouyei, Sui, Mulan and so on. Similarly, Tai families of Northeast India are known as Ahom, Aiton, Khamyang, Khamti, Kabow, Phake and Turung. Of these groups, Aitons, Khamti and Phake still retain the Tai language as their mother tongue. Barring the Ahom, the other Tai groups profess Buddhism as their religion and maintain monasteries. The Ahoms are an offshoot of the Shan branch of the Tai race of Southeast Asia. They entered the plains of Assam in the early thirteenth century, established their kingdom in the Brahmaputra valley and ruled for a long period of six hundred years. Eventually, they acquired the local name 'Ahom' from which, the Brahmaputra valley came to be known as 'Assam'. Following the immigration of Ahom in Assam, other Tai groups came to Northeast India through upper Burma (present Myanmar).

A large number of rare and valuable Tai manuscripts written on sanchi tree bark are still lying scattered in Tai villages and Buddhist monasteries of upper Assam which are awaiting care and preservation. Here manuscripts are available with those section of the people who neither can afford to take care of them nor are aware of the importance of the rare documents which bear the testimony of the long six hundred years rule of the Ahom. These old and rare manuscripts are of different types and the texts they contain are linked with history (social, political, religious, cultural, ethical, economic, etc.), hymns and mantra and astrological and lexicographical literatures. Thus documentation, publication and conservation of the manuscripts on Tai society, religion, culture, art, archaeology, literature, polity and economy would greatly contribute towards human civilization at large and enrich the world of knowledge.

Tai Ahom manuscripts are important documents, not only for the Ahom community

Specimens of Tai Ahom Manuscript

Folios fromTai Ahom Manuscript showing chicken-bone symbols of divination

but also for the world in general. For the Ahom community these manuscripts represent a link to the history and culture of the Ahoms, commencing with the arrival of King Siukapha in 1228 AD and continuing till today. For the wider world, particularly for those interested in Tai studies, these manuscripts contain information about Tai culture dating back many centuries and record the customs and beliefs of Tai people since ancient times.

Linguistically, Tai Ahom belongs to the group of Tai languages which has been termed Southwestern Tai, as the historical home of the speakers of these languages was in the south-western area of the Tai speaking world (Thailand, Laos and Myanmar). Tai Ahom manuscripts represent one of the oldest examples of Tai language. Ahom manuscripts contain texts that were originally composed several hundred years ago, and represent examples of the way Tai language was used at that time. The international community of South and Southeast Asian scholars alike would benefit greatly from access to these documents and reference materials on traditional Tai Ahom language.

Ahom language has not been spoken as a mother tongue for the last 200 years or so. Therefore, these manuscripts have acquired a great significance. They represent one of the ways in which Ahom culture is preserved. These manuscripts allow us to answer questions about the culture, history and language of the Tai Ahoms which cannot be answered in any other way. A thorough study of the manuscripts is thus a matter of great importance for the advancement of knowledge of the Tai people and language. A second benefit that flows from the careful study of the traditional manuscripts is that a much richer dictionary of words which were actually used in the Ahom manuscripts may be prepared.

Tai Ahom Manuscripts

Manuscripts written in Tai Ahom language are as old as the advent of the Ahom in Assam. The scholars, who accompanied Prince Siukapha, brought a good number of manuscripts with them. They also began to write the chronicles as per the directions of the Prince from the very beginning of their journey to Assam and continued the practice till the end of Ahom rule.

Tai Ahom manuscripts bear certain characteristic features which may be noted as under:

1. Most of the manuscripts are written on sanchi-pat, the bark of alee tree (*aquilaria agalloche*), called *agar* in Assamese. Some were written on muga silk cloths and some were written on bamboo splits. Size of the manuscripts written on sanchi-pat,vary from 9 x 3.5 sq. cms. to 51 x 14 sq. cms.

2. Manuscripts are written on both sides of the folio except the cover pages and each side contains more or less 3 to 15 lines as per size of the folio.

3. Usually folio numbers are written at the left margin of the verso in Tai Ahom digits or words.

4. Another notable feature of Tai manuscripts is that they were never been given a name or title. Sometimes a reader used to allot a superficial name as per contents, such as *Pu-Lan-Chi, Khek-Lai, Sai-Kai, Ban-Seng,* etc.

5. Name of the scribe is generally inscribed on the last folio of the manuscript along with the name of the family he belongs to.

6. The date of inscription is written in Ahom *Lak-Ni.*

7. The folios of a manuscript are generally put together unbound. Four blank folios or planks are placed on the four sides of the manuscript and tied with a string. Sometimes they are wrapped in a cloth. Some manuscripts are found to have a hole at the centre of the folios to tie them together with a string. This kind of manuscript is called *'Nai-Kota-Puthi'.*

8. Traditionally manuscripts are suspended above the fire place of a house as a measure of protection from moisture and moth.

Ahom manuscripts cover a variety of subjects. These manuscripts may be classified into 8 categories as per contents - such as chronicle, lexicon, *lak-ni, phura-lung,* legend and story, omen & divination, ritual and astrology. However, putting together the manuscripts under *phura-lung* and ritual categories together these may be classified into 7 categories. A good number of manuscripts may be placed under 'unknown' category, as the contents of these manuscripts could not be deciphered.

A brief discussion on the different categories of manuscripts is given below:

Chronicles: The chronicles are the historical account. They are called *pu-lan-chi* which is termed as *buranji* in Assamese. They were divided traditionally as Deo Buranjis and Din Buranjis. Din Buranjis are the Royal account of Ahom dynasty written from the time of descent of Khun-Lung and Khun-Lai to the last king of Ahom kingdom. On the other hand, the Deo Buranjis contain the accounts of ancestral gods of Ahom. The chronicle under the category Din can be sub divided into royal and ordinary family lineage. The royal chronicles can again be sub-divided into Ahom royal chronicles and the chronicles of the dynasties ruling in the neighbouring states. The family chronicles are the lineage accounts of a particular family or a clan. Chronicles are the treasures of facts and figures of the reign of Ahom dynasty.

Lexicons: Lexicons are the Tai Ahom – Assamese dictionary. They are written in Ahom letters but the language is Assamese. Ahom lexicons are traditionally known as *amra.* They are of three types - *boramra, loti amra* and *phulamra. Boramra* contains all the important words while the *loti amra* and *phulamra* contain

A few bundles of Tai Ahom Manuscripts preserved at the Institute of Tai Studies and Research, Moranhat

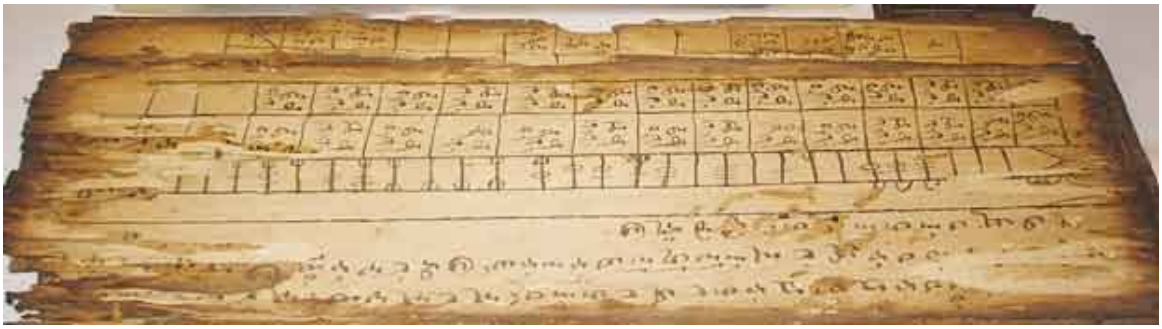

Tai Ahom manuscript on astrology

the words relating to human body, building, vegetable, fish etc. Amras are arranged in Ahom alphabetical order. As recorded, Tengai Pandit of Dihingia Mohan family was the first person who wrote the Ahom Lexicon under the title *'Bor Kakot Ho Mung Puthi'.* He wrote it during the latter part of the reign of Chao Pha Siu Hit Pong Pha (Gourinath Sinha) in the year 1795. Thereafter, his followers began to copy his manuscript and multiplied it to a great number. The total number of lexicons recorded so far in the survey is 51.

Lak-nis: *Lak-Nis* is the Ahom calendar calculated under 60 years circle of Ahom era. Some important events that occurred in the past are also incorporated in the *lak-nis.* Manuscripts available under this category are very few in number.

Ritual and mantra: Manuscripts under this section contain the systems of worship of deities and gods and the rules and regulations of different rituals which are observed by the Ahom community. In these manuscripts, we also find the hymns which are to be enchanted in such rituals. Some of the notable manuscripts under this section are *Peyn-Ka-Ka, Phu-Ra-Lung, Phe -Ok-Nok, Khek -Lai* etc.

Legend and story: Manuscripts under this category contain some legends and stories which prevailed among the Ahom people. Total manuscripts recorded so far is 65. Some of the popular manuscripts in this section are *Nang-Hun-Pha, Ma-Li-Kha, Pung-Ko-Moung, Lai-Ko-Mung, Leng-Don, Doi-Lai, Pung Ngyao Kham, Lai-Lit,* etc.

Omen & divination: Manuscripts under this section contain the systems, rules and techniques of calculation of omen, including the preventive solutions of evil omens. The important manuscripts in this category are *Phe-Lung Phe-Ban, Sai-Kai, Lit-Du Kai Seng,* and *Ban-Seng.* The number of manuscripts recorded under this section is 183.

Astrology: The number of manuscripts recorded under this section is very few, but these are very important ones for more than one reason. These manuscripts include discussion on the techniques of location of stars in the universe and probable influences of stars on human being. During the survey only 7 manuscripts have been recorded in this category. *'Sai-Kai'* and *'Lit-On-Dao'* are the two notable manuscripts under this section.

It has already been mentioned that the contents of a good number of manuscripts are left unidentified. They are recorded as 'unknown'. In total, 145 manuscripts are placed under this section.

In addition to the Tai Ahom manuscripts, there are a number of manuscripts written in Other Tai (OT) languages like Aiton, Khamti, Khamyang, Phake and Turung. These are found in the Buddhist monasteries of upper Assam and Arunachal Pradesh. The contents and characters of these manuscripts are different from the Tai Ahom manuscripts. As noted earlier, all other Tai groups such as the Aiton, Khamti, Khamyang, Phake and Turung profess Buddhism as their religion. Therefore, the manuscripts lying in the Buddhist monasteries and with these Tai communities are related to Buddhist philosophy and doctrine. Unlike Tai Ahom manuscripts, these manuscripts are written largely on hand-made paper, palm-leaf, cloth and tula-pat. Manuscripts in

other Tai languages are very difficult to be categorized into Aiton, Khamti, Phake etc. as because no distinction could be made from their contents. Only exceptions are the chronicles written in these languages. Each chronicle written in other Tai languages bears the history of a particular group. However, manuscripts written in other Tai languages may be categorized as follows:

Abhidhamma Doctrine: Abhidhamma volumes, Abhidhamma Vibhanga, Abhidhamma Patthana, Abhidhamma Dhatukatha, Abhidhamma Puggalapnnati, Abhidhamma Yamaka, Abhidhamma Sanggani

Suttanata Doctrine: Suttanata volumes, Sila volumes, Pattikavagga, Mahavagga, Aggaya

Vinaya: Vinaya Mahavagga, Vinaya Parivagga, Vinaya Cullabagga

Scriptures related to Buddhism: Dhamma & Kamma, Sutta Nibbana, Maitreya Buddha, great disciples, history of sacred objects, Kathina, Milinda Panha, Ho'-Tham, Ohung Chin, Yasodhara, Visakha, Jataka, Hong Khwan, proverbs & moral teaching, Ramayana, medicine, divination & mantra, etc.

Mixed Text: Chronicle & Buddhism

Present condition of Tai manuscripts

It is believed that most of the important Ahom manuscripts were written in the 18th century, in many cases as copies of older documents. Since these manuscripts follow the traditional Ahom system of dating, the 60 year *Lak-ni* cycle, it is not always possible to establish the date of the copying of a manuscript.

The manuscripts have been preserved in the homes of members of the Ahom priestly class (families such as Mohan, Deodhai, Bailung) for many generations. The state of preservation of manuscripts varies widely. Some are very well preserved and are complete, whereas others are in rather poor shape and not so well preserved. Most of the manuscripts are written on sanchi-pat, although some are written on silk and some of the later manuscripts on hand-made paper. Despite being fragile and liable to be damaged by water or insects, sanchi-pat is in fact a durable substance and has survived, though some important texts have been lost.

Tai manuscripts face a number of threats. Firstly, many are gradually being damaged by Assam's hot and humid climate. While some Ahom manuscripts are stored in public institutions, including Department of Historical and Antiquarian Studies, Gauhati University, Tai Museum (Sibasagar), Institute of Tai Studies and Research (Moranhat), and Dibrugarh University, the vast majority are held by individuals and some of these are poor families without the ability to store and to take care of the manuscripts. It has been followed that in some cases moisture or insects have got into the manuscripts and damaged them. Some manuscripts that were photographed even 5 years ago have deteriorated in the meantime; pages have been lost or the readability of the manuscript has been badly affected.

Most of the manuscripts with the owners, who inherited them from their forefathers, are left unpreserved. However a few owners preserve them with utmost care. Comparing to the whole, only a very small fraction of Tai manuscripts are collected for preservation in the institutions with suitable infrastructure. The institutional repositories with Tai manuscripts are:

1. Department of Historical & Antiquarian Studies, Guwahati - 112 (Both Ahom & Other Tai)
2. K.K. Handique Library, G.U. - 76 (Other Tai)
3. Assam Sate Museum, Ambari, Guwahati - 10
4. Srimanta Sankardev Kalakhetra, Guwahati - 110
5. Tai Museum, Sivasagar - 34
6. Institute of Tai Studies and Research, Moranhat - 259

The conditions of the manuscripts lying with the individual owners are as follows:

- Most of the manuscripts are suspended above the fireplace for which the outer folios are blackened with the thick layer of smoke and the text has become illegible.
- Many of them are eaten by moth or other insects.
- Some of them are damaged partly or wholly due to acute humidity.
- In case of older manuscripts, most of the folios are worn out and the text turned illegible.
- The folios of some manuscripts are dislocated or missing due to mishandling or mixing the folios of one manuscript with those of another.
- Numberings on the folios of some manuscripts have lost readability due to thick layer of smoke on them.
- Number of manuscriptologists, who are well versed in Tai languages and scripts is dwindling day by day. Therefore the practice of re-arranging and re-numbering of folios have been abandoned for a long time.

Under the circumstances as stated above, it is advisable to take some early steps for the preservation of the precious Tai manuscripts. The following steps may be recommended for the purpose:

1. An extensive survey should be conducted to unearth the manuscripts which are yet to be documented, as early as possible so that a comprehensive catalogue could be prepared. It appears that all manuscripts which are scattered in different places with individual owners are not yet covered.
2. Steps should be taken by the institutional repositories to collect important manuscripts for preservation. The owners of such manuscripts may naturally be unwilling to surrender their invaluable inherited properties. As an alternative, the scanned copies of such manuscripts may be collected and the owner of the original manuscripts may be helped to preserve them properly. The scanned copies so collected should be stored in multiple formats and in different locations to ensure durability and security.
3. The manuscripts that are left disorderly should be rearranged properly.
4. Missing or lost folios are to be collected or copied from the identical manuscripts available elsewhere.
5. Folios that have been damaged or eaten by moth are to be rewritten comparing with the identical manuscripts.
6. A group of young learners of the region are to be trained for scientific preservation of manuscripts.
7. Appropriate measures for conservation of manuscripts should be taken immediately before these are lost forever.

Literary value of Tai manuscripts

Tai manuscripts reflect all the aspects of life of the Tai people of bygone days. We find in them variety of literatures such as chronicles, legends, astrology, medicine, rituals etc. These works bear great literary value. As for instance, the chronicles written in Ahom contain all important accounts of events of the Ahom reign including the accounts of the neighbouring kingdoms. They reflect the system of administration, royal customs and rituals, rules and regulations, ranks and files of officials and foreign policies and more importantly they reflect the philosophy and the way of life of the community as a whole. Likewise, the literature under the section rituals (mentioned above) reflects the beliefs, faith and the worships performed by the Tai Ahom people. Manuscripts like *Pyen-Ka-Ka, Lai-Ko-Mung* and *Pung-Ko-Mung* under the section legend and story include the theory

A damaged folio of Tai manuscript

on the creation of universe. The different spheres of universe and the powers which dominate in these spheres are discussed in *Pung-Ko-Mung* and *Lai-Ko-Mung,* including the probable impacts of such powers on men. Unfortunately, the literary values of these manuscripts have not yet been uncovered as the language in which they are written is unintelligible to us. The few manuscripts which have been translated and published so far bear the testimony of the literary values of the manuscripts.

Epilogue

These 400-500 year old very rare manuscripts are neither conserved nor deciphered and documented or translated and published. If proper attention is given these manuscripts would be a valuable source of empirical research. A number of foreign scholars from Germany, Australia, China, Myanmar, Laos and Thailand come to this part of Northeast India every year in search of these materials. Of late **it has come to our notice that some of the owners of Manuscripts unfortunately sale them to the foreign scholars due to lack of knowledge of conservation and their importance. More importantly, some manuscripts are either burnt or buried along with the dead body of a person who possessed those rare documents.**

The Institute of Tai Studies and Research own a good number of manuscripts which are not yet conserved. Besides, after undertaking the work of survey of manuscripts under MRC programme, it has come to our knowledge that a large number of rare and valuable manuscripts need urgent treatment to protect them from extinction. It will be a crime on our part if we do not take appropriate measures to conserve those 'endangered' manuscripts before these are lost forever. We seriously feel that considering the urgency of the situation, the work of conservation of manuscripts should be started war footing with immediate effect.

Again, if these are not properly preserved by publishing and copying them into a better form through scientific devices, all the valuable materials will be extinct forever; and many of them have already lost. Only a handful of persons have got the knowledge of reading and writing of the Tai Ahom Language. After the demise of these persons, it will be difficult to translate the manuscripts. It may be noted that the international community also expresses its concern about the languages of Northeast India. In 2006, the Educational Council of the UNO declared two languages of Northeast India, Edu-Misimi and Tai Khamyang as 'endangered' languages which may be extinct forever if no appropriate measure is taken for their preservation. Recently the UNESCO has declared the Tai Ahom language not only 'endangered' but 'extinct' language. In view of this, it has become very important to take every possible measure to protect the language and the knowledge which are counting their days in neglected Tai manuscripts of the Northeast.

Dr. Girin Phukan
is Prof. & Director, Institute of Tai Studies & Research, Moranhat, Assam

बङ्गाल के शिरोमणि गदाधर भट्टाचार्य के गुरु हरिराम तर्कवागीश की पाण्डुलिपियाँ

प्रो० हरेराम त्रिपाठी

भाति ज्ञाने रत: आसक्त: इस संस्कृत व्युत्पत्ति के अनुसार अनादिकाल से भारतवर्ष तत्त्वज्ञानार्जन करता रहा है। इसके लिए उदाहरण के रूप में देखा जाय तो यह कहा जा सकता है कि विश्व की सबसे प्राचीन साहित्य वेद की रचना भारतवर्ष में ही हुई। वेद में भी ऋग्वेद के द्वितीय मण्डल से अष्टम मण्डल की ऋचाओं की अतिप्राचीनता को मैक्समूलर[1] भी स्वीकार करता है। तत्त्वज्ञानार्जन के क्रम में भारतवर्ष की परम्परा रही है कि गुरु के उपदेश को शिष्य कण्ठस्थ करता था तथा अपने शिष्य में उस ज्ञान को संक्रमित करता था। यह परम्परा अनादिकाल से आ रही थी। जन्मसंस्कार विद्यादे: शक्ते: स्वाध्याय कर्मणो:। हास दर्शनतो ह्रास: सम्प्रदायस्य मीयताम।[2] अर्थात् कालक्रम से जन्म, संस्कार, विद्या, सम्प्रदाय आदि का ह्रास होना अवश्यम्भावी है ऐसा श्रद्धेय उदयनाचार्य जी का कथन है। इसको भारतीय जनमानस ने स्वीकार किया तथा गुरु परम्परा से प्राप्त ज्ञान राशि को पूर्ववत् बनाये रखने के लिए लेखन कला को विकसित किया। सभी कलाओं की उत्पत्ति दैवी मानी जाती है ऐसा शास्त्रकारों का मत है। जैसे विद्या की अधिष्ठातृ देवी सरस्वती है जिनके माध्यम से ब्रह्म के मानस पुत्रों के द्वारा विद्या कला का विकास किया गया। इसी तरह भारतीय लेखन कला का भी विकास ब्रह्मा के द्वारा स्वीकार किया जाता है। भारतवर्ष में 580[3]ई० का एक पाषाण खण्ड मिलता है। जिस पर हाथ में ताल पत्र लिए हुए ब्रह्मा का विग्रह अङ्कित किया गया है। ये ताल पत्र उस समय के लेखन का आधार मालुम पड़ता है। यद्यपि कुछ विद्वानों का मत है कि सर्वप्रथम ताल पत्रों पर ही भारतवर्ष में लेखन कार्य प्रारम्भ हुआ। तथापि सर्वप्रथम लेखन कार्य का प्रारम्भ भोज पत्र पर ही प्रारम्भ हुआ शास्त्रकारों का मत है। यद्यपि प्राचीन काल में ही भोज पत्र पर लेखन प्रारम्भ हो चुका था तथापि मैक्समूलर का कथन है कि पाणिनि के अष्टाध्यायी में लेखन कला का सङ्केत नही है इसलिए 400 ईसा पूर्व से ही भारतवर्ष में लेखन कला का उद्भव हुआ। वर्नेल के मतानुसार ब्राह्मी लिपि फिजीशियन से निकली, इस लिए भारतवर्ष में लेखन कला का आरम्भ 400 या 500 ईसा पूर्व हुआ होगा। परन्तु उपर्युक्त मत ठीक नही है क्योंकि 19 वीं शताब्दी या 20 वीं शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षो में मोहनजोदड़ो आदि की खुदायी से मिली सिन्धुघाटी की प्राचीन सभ्यता तथा लेखन के उपकरण से यह सिद्ध हो गया है कि ईसा पूर्व 4000 या 5000 वर्ष पूर्व भारतवर्ष में लेखन कला विकसित हो गयी थी। पं० गौरीशङ्कर[4] हीराचन्द ओझा एवं पं० राजबली पाण्डेय आदि विद्वानों के अनुसन्धान से यह हमे सुलभ हो गया है कि अतिप्राचीन काल से ही भारतवर्ष के लोगों को लेखन कला का ज्ञान हो गया था। चीनी यात्री युवान[5] च्वांग ने कहा है कि भारत देश में लेखन कला की खोज बहुत प्राचीन काल में ही हो गया था। चीनी विश्व कोश[6] में प्राचीन कालीन विश्वस्तरीय तीन लिपियों की चर्चा की गयी है। इन तीनों में से अन्यतम लिपि ब्राह्मी लिपि है जिसका उद्भव ब्रह्मा से माना जाता है। यह लिपि बांए से दाए के तरफ लिखी जाती थी। महमूद गजनवी के साथ भारत में आए अल्बेरुनी ने किताब उल हिन्द (भारत की खोज) में कहा है कि हिन्दु एक बार लेखन कला भुल चुका था। वेद व्यास ने लेखन कला को पुनर्जीवित किया। सिकन्दर के सेनापति नेआरकस[7] ने कहा है कि भारत के निवासी कपास और चौथड़ो से कागज निर्मित करते थे। यूनानी लेखक क्विन्दस कर्टियस का कथन है कि प्राचीन भारत में वृक्षों की अतिमुलायम छाल पर लेखन कार्य किया जाता था। चन्द्रगुप्त मौर्य के राज्य में अतिथि के रूप में आये यूनानी राजदूत मेगस्थनीज (305-299 ई० पूर्व) ने "इण्डिका" ग्रन्थ में लिखा है कि चन्द्रगुप्त मौर्य के राज्य में व्यवस्थित सड़के होती थी तथा सड़कों पर दस दस स्तादियों के बाद विश्राम गृह को दर्शाने के लिए पत्थर लगाए गये थे। पञ्चाङ्ग का निर्माण, कुण्डली का निर्माण तथा स्मृतियों के आधार पर निर्णय करना इत्यादि का अपने ग्रन्थ में मैगस्थनीज उल्लेख किया है। उपर्युक्त सभी मतों की समीक्षा करने से यह प्रतीत होता है कि भारतवर्ष में प्राचीन काल से ही ब्राह्मी लिपि का विकास हो चुका था। तथा भारतवर्ष में प्राचीन पुरातत्त्व अभिलेखों के प्राप्त होने के कारण लेखन कला का विकास में अतिप्राचीन स्वीकार किया जा सकता है। यद्यपि मैक्समूलर लेखन कला

का सङ्केत पाणिनि की अष्टाध्यायी में नही है ऐसा स्वीकार करता है तथापि लिपि का प्राचीनतम उल्लेख पाणिनि की अष्टाध्यायी में नहीं है ऐसा स्वीकार करता है तथापि लिपि का प्राचीनतम उल्लेख पाणिनीय के अष्टाध्यायी में किया गया है लिपि के लिए लिपि[8] और लेखक के लिए लिपिकार शब्द का प्रयोग हुआ है। यवनों की लिपि को यवनानी[9] कहा गया है। (अ. 3 पाठ 2 सू.श.)(आ. 4 पा. 1-49) अशोक के अभिलेखों में लिपि, लिवि, और दिपि शब्द पाये जाते है। उक्त अभिलेख ब्राह्मी एवं खरोष्ठी लिपियों में लिखे गये है। जिसका अवलोकन करने से पता चलता है कि ब्राह्मी एवं खरोष्ठी लिपि का उद्गम स्थान भारतवर्ष ही है। ब्राह्मी लिपि का आविष्कार भारतवर्ष में आर्यो के द्वारा वेद की रक्षा के लिए किया गया था। मुख्यत: प्रबुद्ध वर्ग इसका प्रयोग करते थे जिनका कार्य था प्रतिलिपि करके वेद का अध्यापन करते हुए वैदिक साहित्य की रक्षा करना तथा अगली सन्तति के लिए हस्तान्तरित करना था। ब्राह्मी लिपि की प्रमुख विशेषतांए निम्न लिखित है।

1. ब्राह्मी लिपि का अन्य लिपियों की अपेक्षा अधिक कोणाकार होना।
2. पश्चात् ब्राह्मी लिपि में टेढ़े मेढ़े अक्षरों का प्रयोग करना।
3. प्रारम्भ में दीर्घ मात्राओं का कुछ अभाव सा दिखना। जैसे 'ई' आदि।
4. प्रारम्भ में अनुस्वार का प्रयोग न करना।
5. दोहरे व्यञ्जनों का प्रयोग प्राय: न दिखाई देना। जैसे पक्का के स्थान पर पका का प्रयोग करना।

अशोक कालीन ब्राह्मी लिपि एक विशेष शैली के रूप में सम्पूर्ण भारतवर्ष के शिलालेखों मे पायी जाती है। सहबाजगढ़ी एवं मानशेहरा पाकिस्तान स्थित स्थानों के शिलालेखों की लिपि खरोष्ठी पायी जाती है। कुषाणकालीन ब्राह्मी लिपि कनिष्क, हुविष्क, वासिष्क आदि के काल की शिलालेखों में पायी जाती है। इस लिपि में शिलालेख मथुरा तथा इसके आसपास स्थानों से उपलब्ध होते है। पूर्वी राजस्थान एवं साँची आदि स्थानों पर भी पाये गये है। ब्राह्मी लिपि को ही देवनागरी लिपि की जनिका स्वीकार किया जाता है। इसलिए ब्राह्मी लिपि से देवनागरी लिपि के विकास क्रम को संक्षिप्त रूप से प्रस्तुत कर रहा हूँ।

गुप्त काल में ब्राह्मी लिपि कोणदार लिखे जाते थे जिनकी तुलना देवनागरी लिपि से निम्न प्रकार है।

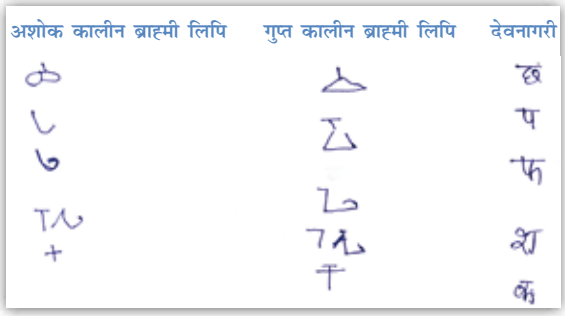

मात्राओं का प्रयोग एक नूतन पद्धति से गुप्तकाल में किया जाने लगा।

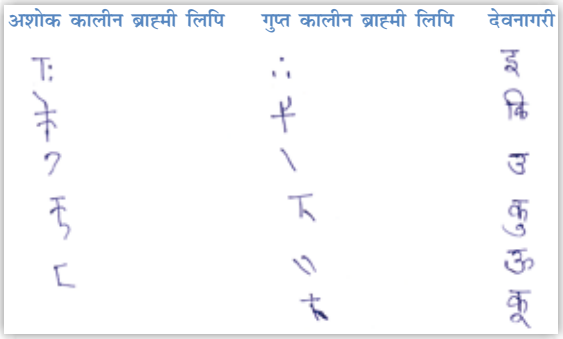

उक्त विकास क्रम को देखने से प्रतीत होता है कि ब्राह्मी लिपि की विकास यात्रा परिष्कृत रूप में देवनागरी लिपि के रूप में परिणत हो गयी। जिसके कारण संस्कृत साहित्य का लेखन देवनागरी लिपि में होने लगा। यद्यपि संस्कृत साहित्य का लेखन प्राय: स्थानीय लिपियों में भी पाया जाता है। जैसे जम्मू काश्मीर में शारदा लिपि बिहार प्रान्त के दरभङ्गा आदि जनपद में मैथिली लिपि बंगाल में बंग लिपि दक्षिण भारत में ग्रन्थ लिपि का प्रचलन पाया जाता है। उसी क्रम में न्याय एवं वैशेषिक दर्शन के ग्रन्थ पाण्डुलिपि के रूप में यदि दक्षिण भारत में पाये जाते है तो प्राय ग्रन्थलिपि या तेलगु या मलयालम आदि लिपियों में, यदि काश्मीर में पाये जाते है तो शारदा लिपि या देवनागरी लिपि में, यदि उक्त पाण्डुलिपि सरस्वती भवन पुस्तकालय सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्व विद्यालय वाराणसी में उपलब्ध होते हैं तो देवनागरी लिपि, बंग लिपि, मैथिली लिपि में ही। मिथिलाञ्चल दरभङ्गा आदि में पायी जाने वाली पाण्डुलिपियों की लिपि प्राय: मैथिली है। कुछ पाण्डुलिपियाँ देवनागरी लिपि में भी दृष्टिगोचर होती है। न्यायदर्शन में प्राचीन एवं नव्य, दो प्रकार के भेद दिखाई देते है। प्राचीन न्यायदर्शन के प्रवर्तक महर्षि गौतम को स्वीकार किया जाता है। गौतम से लेकर उदयनाचार्य पर्यन्त प्राचीन न्याय के आचार्य माने जाते है। महर्षि गौतम विरचित न्यायसूत्र पर टीकोपटीका किये गये, जो कि प्राचीन न्याय शब्द द्वारा जाना जाता है। प्राचीन न्यायदर्शन के प्रमुख ग्रन्थ तथा आचार्यो का विवरण निम्न लिखित है।

	ग्रन्थ नाम	लेखक/टीकाकार
1.	न्यायसूत्रम् (न्यायदर्शनम्)	महर्षि गौतम
2.	न्यायसूत्रवात्स्यायनभाष्यम्	श्री बात्स्यायनाचार्य
3.	न्यायसूत्रभाष्यवार्तिकम्	महर्षि उद्योतकर
4.	न्यायसूत्र भाष्यवार्तिकतात्पर्यटीका	श्री वाचस्पति मिश्र
5.	न्यायसूत्र भाष्यवार्तिकतात्पर्यटीका परिशुद्धि:	श्री उदयनाचार्य

उक्त टीकोपटीकाओं में प्रमेय की प्रधानता है तथा सोलह पदार्थो का विवेचन किया गया है। बारहवीं शताब्दी में मिथिला से न्याय की एक नूतन पद्धति का आविर्भाव हुआ जिसके जनक श्री महामहोपाध्याय गङ्गेशोपाध्याय माने जाते है। इनका विश्व प्रसिद्ध ग्रन्थ "तत्त्वचिन्तामणि" है। इस ग्रन्थ में न्याय के चार प्रमाणों का विस्तृत विवेचन पारिभाषिक शब्दावलियों के माध्यम से किया गया है। आचार्य वात्स्यायन ने न्यायभाष्य में कहा है कि "प्रमाणै: अर्थपरीक्षणं न्याय:[12]" प्रमाणों के द्वारा पदार्थो का परीक्षण किया जाता है उसे न्याय कहते है। इसी को चरितार्थ करते हुए गङ्गेशोपाध्याय ने प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान एवं शब्द प्रमाण का विस्तृत विवेचन किया। यद्यपि प्रमाणों के विवेचनक्रम में सभी प्रमेयों का निरूपण प्रकारान्तर से तत्त्व चिन्तामणिकार ने कह ही दिया है। इस तत्त्व चिन्तामणि ग्रन्थ की टीका दीधिति रघुनाथ शिरोमणि द्वारा विरचित है, जिसकी गादाधरी टीका गदाधर भट्टाचार्य तथा जगदीशी टीका जगदीश भट्टाचार्य द्वारा विरचित विश्व में नव्यन्याय की पताका को दिग दिगन्त तक फैला रही है। गदाधर भट्टाचार्य के गुरु तत्कालीन वंग प्रदेश के प्रसिद्ध नैयायिक हरिराम तर्कालङ्कार की यद्यपि तत्त्व चिन्तामणि पर कोई टीका हमें अद्यावधि उपलब्ध नही होती है। परन्तु नव्यन्याय के विषयों पर स्वतन्त्र ग्रन्थ के रूप उनकी कुछ पाण्डुलिपियाँ हमें देखने को मिली है। भारतवर्ष की हस्तलिखित (पाण्डुलिपि) पुस्तकालयों में से अन्यतम रघुनाथ मन्दिर पुस्तकालय है। 18 वीं शताब्दी में राजा रणवीर के द्वारा इस पुस्तकालय का निर्माण कराया गया। आज भी संस्कृत साहित्य से सम्बन्धित दुर्लभ पाण्डुलिपियाँ यहाँ पायी जाती है। 22 अक्टूबर 1993 में राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान नई दिल्ली द्वारा रणवीर केन्द्रीय विद्यापीठ जम्मू में व्याख्याता (न्याय) सर्वदर्शन विभाग में मेरी नियुक्ति होने पर प्रति शनिवार अवकाश के दिन मै रघुनाथ मन्दिर पुस्तकालय जाता था। जिसमें नव्य न्याय की दुर्लभ कुछ पाण्डुलिपियाँ हमें प्राप्त हुई। जिसके माध्यम से हरिराम तर्कालङ्कार विरचित दुर्लभ पाण्डुलिपियों का सङ्कलन कर नवीन मतादिविचार:[13] ग्रन्थ का सम्पादन "हरिराम तर्कवगीश ग्रन्थावलि: भाग 1" के रूप में किया। इसी क्रम में विभन्न हस्तलिखित पुस्तकालयों के पाण्डुलिपि सूची ग्रन्थ के अध्ययन से यह प्रतीत हुआ, कि हरिराम तर्कालङ्कार के दुर्लभ अप्रकाशित अन्य ग्रन्थों का भी सम्पादन किया जा सकता है। हरिराम तर्कालङ्कार विरचित "नवीनमतादि विचार:" ग्रन्थ में हरिराम विरचित बारह ग्रन्थों का सङ्कलन किया गया है। इनमें से निम्न लिखित ग्रन्थ पूर्व में प्रकाशित थे।

1. प्रमाण्यवाद : श्रीविश्वबन्धु विरचित प्रभा ठीका सहित, 1963 (ईश्वीय), कलकत्ता संस्कृत कालेज, कलकत्ता, ग्रन्थांक 35
2. रत्नकोशमतवादार्थ : (निबन्धावली) मिथिला संस्कृत विद्यापीठ, दरभङ्गा
3. आचार्यमतरहस्य : मिथिला संस्कृत विद्यापीठ, दरभङ्गा
4. ध्वंसजन्य भावयो : कार्यकारण भावरहस्यम् : संस्कृत कालेज, कलकत्ता
5. ज्ञानलक्षणारहस्यम् : संस्कृत कालेज, कलकत्ता

इसके अतिरिक्त सात दुर्लभ पाण्डुलिपियों का सङ्कलन करके मेरे द्वारा प्रकाशन किया गया। ये दुर्लभ पाण्डुलिपियाँ निम्न लिखित ग्रन्थों की है।

1. नव्यमतरहस्यम् : रघुनाथ मन्दिर पुस्तकालय, स्टेन सूची 15, पत्र सं. 1319
2. अनुमिति विचार : रघुनाथ मन्दिर पुस्तकालय, स्टेन सूची पत्र 1260 एवं 1225
3. अवच्छेदकानुमितिविचार : रघुनाथ मन्दिर पुस्तकालय, स्टेन सूची पत्र 1320
4. बाधबुद्धिप्रतिबध्यप्रतिबन्धकवाद : रघुनाथ मन्दिर पुस्तकालय, स्टेन सूची पत्र 1451, सं.सं.वि.वि. वाराणसी सं.
5. मङ्गलवाद : सरस्वती भवन पुस्तकालय, सं.सं.वि.वि., वाराणसी, सूची पत्र सं. 30823 एवं 32598
6. विषयताविचार : सरस्वती भवन पुस्तकालय, सं.सं.वि.वि., वाराणसी, ग्रन्थाङ्क 31967 एवं 30531
3 अवच्छेदकानुमितिविचार : सरस्वती भवन पुस्तकालय, सं.सं.वि.वि., वाराणसी, ग्रन्थाङ्क 31065 एवं 33496
7. विधिवाद : सरस्वती भवन पुस्तकालय, सं.सं.वि.वि., वाराणसी ग्रन्थाङ्क 31065 एवं 33496

इसके अतिरिक्त पूर्व प्रकाशित पाँच ग्रन्थों का भी निम्नलिखित पाण्डुलिपियों के माध्यम से पाठान्तर के माध्यम से संशोधित किया।

1. रत्नकोशविचार : सरस्वती भवन पुस्तकालय, सं.सं.वि.वि., वाराणसी, ग्रन्थाङ्क 31759
2. अनुमितेर्मानसत्वविचाररहस्यम् : संस्कृत कालेज, कलकत्ता, सू.प. ध्वंसजन्य 17/143
3. ज्ञानलक्षणारहस्यम् : संस्कृत कालेज, कलकत्ता सू.प. न्यान नं. 17/148
4. भावयो कार्यकारणभावरहस्यम् : संस्कृत कालेज कलकत्ता, सू.प. न्याय नं. 1083

हरिराम तर्कालङ्कार महोदय के अनेको दुर्लभ पाण्डुलिपियाँ संस्कृत कालेज कलकत्ता, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्व विद्यालय वारणसी के सरस्वती भवन पुस्तकालय, विश्वेश्वरानन्द शोध

संस्थान होशियारपुर पंजाब तथा रघुनाथ मन्दिर पुस्तकालय जम्मू आदि में विद्यमान है जिनका प्रकाशन किया जा सकता है। विभिन्न सूचीपत्र एवं गन्थों के अध्ययन से हरिरामतर्कालङ्कार की दुर्लभ पाण्डुलिपियों का पता चलता है। जिसका विवरण निम्न लिखित है।

गोपीनाथ कविराज के अनुसार हरिराम तर्कालङ्कार को हरिराम तर्कवागीश कहा जाता है जिनके ग्रन्थों का उल्लेख उन्होंने निम्नलिखित रूप से किया है:-

1. आचार्यमत रहस्यम्।
2. न्यायनव्यमतविचार:।
3. रत्नकोशविचार:।
4. विषयताबाद:।
5. प्रत्यासत्तिविचार:।
6. मङ्गलवाद:।
7. प्रमाणप्रमोद:।
8. अनुमितिपयमर्शबाधबुद्धि।
9. प्रतिबन्धकताविचार:।
10. विशिष्टवैशिष्टयबोधविचार:।
11. नव्यधर्मितावच्छेदकता।

इन्साइक्लोपीडिया आफ इण्डियन फिलासफी ग्रन्थ के अनुसार हरिरामतर्कवागीश के निम्नलिखित ग्रन्थ है:

1. आचार्यमतरहस्यम्।
2. अनुमितेमानसत्वविचार।
3. अनुमितिपरामर्शबाधबुद्धि:।
4. बाधरहस्यम्।
5. धर्मितावच्छेदकतारहस्यम्।
6. ध्वंसजन्यभावयो: कार्यकारणभावरहस्यम्।
7. द्रव्यमत रहस्यम्।
8. एवकारवादार्थ:।
9. ज्ञानलक्षणाविचाररहस्यम्
10. ज्ञानदवयरहस्यम्।
11. मंगलवाद:।
12 मुक्तिवादविचार:।
13 नव्यधर्मितावच्छेदकता।
14 न्यायनव्यमतविचार:।
15 न्यायपदार्थतत्त्वम्।

श्री नेनीगोपाल तर्कतीर्थ के अनुसार हरिराम तर्कवागीश[20] महोदय की नव्यन्याय से सम्बन्धित बीस (20) दुर्लभ पाण्डुलिपियाँ संस्कृत कालेज कलकत्ता में आज भी विद्यमान है जिनका अन्वेषण किया जा सकता है। हरिराम तर्कवागीश की अन्तर्राष्ट्रीय हस्तलिखित पाण्डुलिपि पुस्तकालय जम्मू में सात पाण्डुलिपियाँ है:

1. अवच्छेदकानुमितिविचार:।
2. नवीनमत विचार:।
3. अनुमितिपरामर्शहेतुताविचार:।
4. धर्मितावच्छेदकताप्रत्यासन्ति:।
5. सामान्यलक्षणम्।
6. बाधबुद्धिप्रतिबध्यप्रतिबन्धकवाद:।
7. सामाग्री विचार:।

विश्वेश्वरानन्द शोध संस्थान, साधु आश्रम होशियारपुर में चार हरिराम तर्कवागीश की पाण्डुलिपियाँ है:-

1. नव्यमतवादार्थ:।
2. पक्षतावाद:।
3. स्वप्रकाशरहस्यम्।
4. कारणतावाद:।

बिब्लियोग्राफी आफ इण्डियन फिलासफी सम्पादक कार्ल पैटर के अनुसार हरिराम तर्कवागीश के 29 ग्रन्थ है जो कि विभिन्न हस्तलिखित पुस्तकालयों में दुर्लभ पाण्डुलिपि के रूप में विद्यमान है।

क्र.सं.	पाण्डुलिपि नाम
1.	आचार्यमतरहस्यम्।
2.	अनुमितेमानसत्वविचार।
3.	अनुमितिपरामर्शबाधबुद्धि:।
4.	बाधरहस्यम्।
5.	धर्मितावच्छेदकतारहस्यम्।
6.	ध्वंसजन्यभावयो: कार्यकारणभावरहस्यम्।
7.	द्रव्यमतरहस्यम्।
8.	एवकारार्थवाद:।
9.	ज्ञानद्वयरहस्यम्।
10.	ज्ञानलक्षणाविचाररहस्यम्।
11.	मङ्गलवाद:।
12.	मुक्तिवादविचार:।
13.	नव्यधर्मितावच्छेदकता।
14.	न्यायनव्यमतविचार:।
15.	न्यायपदार्थतत्त्वम्।
16.	प्रतिबन्धकताविचार:।
17.	प्रामाष्यवाद:।
18.	प्रामाष्यप्रमोद:।
19.	प्रतियोगिज्ञानस्य कार्यकारणभाव:।

20. प्रत्यासन्तिविचारः।
21. सामग्रीविचाररहस्यम्।
22. संशयप्रत्यक्षताविचाररहस्यम्।
23. विषयताविचाररहस्यम्।
24. स्वप्रकाशरहस्यविचारः।
25. स्मृतिसंस्कारवादवीची।
26. विशेषणज्ञानरहस्यम्।
27. विशिष्टवैशिष्य्यबोधविचारः।
28. विशेषणज्ञानरहस्यम्।
29. व्याप्त्यनुगमरहस्यम्।

उक्त पाण्डुलिपियों में से 13 पाण्डुलिपियों का प्रकाशन हो चुका है। पाँच पाण्डुलिपियों का प्रकाशन संस्कृत कालेज कलकत्ता से, दो पाण्डुलिपियों का प्रकाशन दरभङ्गा संस्कृत विद्यापीठ दरभङ्गा से, तथा सात पाण्डुलिपियों का प्रकाशन राजविनय प्रकाशन ग्रा. चकिया पो. शंकर पट्टखौली जनपद, कुशी नगर उत्तर प्रदेश से हो चुका है। शेष पाण्डुलिपियाँ दुर्लभ है जिनका अन्वेषण कर प्रकाशन किया जा सकता है। विश्वप्रसिद्ध गदाधर भट्टाचार्य के गुरु हरिराम तर्कवागीश है इसका उल्लेख "बङ्गे नव्य न्याय चर्चा" में तथा "विब्लियोग्राफी आफ इण्डियन फिलासफीज" में पाया जाता है। हरिराम तर्कवागीश न्यायसिद्धान्तमुक्तावली के दिनकरी टीका में मगलवाद, अनुमितिपरामर्शहेतुताविचार, आदि का विवरण हमें प्राप्त होता है जो कि हरिराम तर्कवागीश के मगलवाद आदि ग्रन्थों में पाया जाता है जिससे यह ज्ञात होता है कि हरिराम तर्कवागीश के ग्रन्थों का प्रभाव दिनकरी पर पड़ा है। इससे तर्कवागीश के ग्रन्थ का महत्त्व और बढ़ जाता है। इसलिए हरिराम तर्कवागीश के दुर्लभ ग्रन्थों का अन्वेषण कर प्रकाशित करने से नव्यन्याय के अध्येताओं को एक नयी दिशा मिल सकती है। तथा भारतीय ज्ञान परम्परा का विस्तार सम्भावित है। हरिराम तर्कालङ्कार हमें जो नयी दिशा दी है उसके लिए हम सब दार्शनिक उनके प्रति कार्तश्य भाव अर्पित करते है।

सन्दर्भग्रन्थ सूची

1. भारतीय पुरालिपि विद्या, भूमिका, पृ.1
2. न्यायकुसुमाञ्जलि : स्तबक 2 का. 3 टा.सं. संस्थान प्रकाशन परिमलामोदसहिता पृ. 125 सं. 2009
3. वादामी से 580 ई. एक पाषाण खण्ड प्राप्त। भा.पु. लिपि विद्याा भू.1
4. भा. पुरा लिपि विद्या भूमिका पृ.1
5. चीनी यात्री युवान च्वांग 630-45 ई०
6. चीनी विश्वकोश फा-वान-शु-लिन
7. नेआरकस 305-299 ई०पू०
8. पाणिनीय अष्टाध्यायी अध्याय 3 पाद 2 सूत्र 21
9. इन्द्र वरुण भवशर्वरन्द्र मृग हिमारण्य यव यवन मातुलाचार्याणामानुक 14/1/41 सूत्र के वाद वार्तिक "यवनाल्लिप्याम्" यवनानां लिपि यवनानी वैयाकरणसिद्धान्त कौमुदी सू. संख्या 505 (स्त्रीप्रत्ययप्रकरण) पृ. 124 संस्करण श्री ला.ब. शा. रा.सं. विद्यापीठ, नई दिल्ली
10. भारतीय पुरालिपि विद्या-प्रकरण ब्राह्मी लिपि का विकास पृ. 28
11. भारतीय पुरालिपि विद्या-प्रकरण ब्राह्मी लिपि का विकास पृ. 36
12. न्यायसूत्र वात्स्यायन भाष्यम आ. 1 अ. 1 सू. 1 के वात्स्यायन भाष्य
13. नवीनमतादि विचारः-राजविनय प्रकाशन
    ग्रा. चकिया पो. शंकर पट्टखौली ज. कुशी नगर उत्तर प्रदेश
14. रघु.म.पु. स्टन सूची ग्र. 1319
15. रघु.म.पु. स्टेन सूची ग्र. 1260, 1225
16. रघु.म.यु. स्टेन सूची ग्र. 1320
17. क्र.सं. 5 से 7 तक सभी ग्रन्थों की पाण्डुलिपियाँ सरस्वती भवन पुस्तकालय में उपलब्ध है।
18. विब्लियोग्राफी आफ इण्डियन फिलासफी लेखक म. गोपीनाथ कविराज. सं.सं.वि.वि. वाराणसी
19. इन्साइक्लोपीडिया आफ इण्डियन फिलासफी प्रकाशक-मोनीलाल बनारसीदास
20. ज्ञान लक्षणारहस्यम् के टीकाकार श्री ननी गोपाल तर्कतीर्थ की भूमिका में कहा गया है।
21. बिब्लियोग्राफी आफ इण्डियन फिलासफी, सम्पादक काल पैटर
22. वंगे नव्यन्याय चर्चा (लिपि) वंगीय संस्कृत साहित्य परिषद् कलकत्ता, पं. बंगाल

प्रो० हरेराम त्रिपाठी

आचार्य, सर्वदर्शन विभाग,
श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विद्यापीठ
(मानित विश्वविद्यालय)

अभिज्ञानशाकुन्तल के पाठविचलन का सम्भावित क्रम

प्रो० वसन्तकुमार म० भट्ट

भूमिका: अभिज्ञानशाकुन्तल की अभी तक करीब पाँच-छ वाचनायें प्रकाशित हुई है। जैसे कि (क) बृहत्पाठ-परम्परा को सुरक्षित रखनेवाली 1. बंगाली वाचना (Pischel, 1922), का ञीलाल, 1980), 2. मैथिली वाचना, (झा, 1957) 3. काश्मीरी वाचना (बेलवालकर, 1965), तथा 4. उत्कलीय वाचना (नवकिशोरकर, 1960) है। तथा (ख) लघुपाठपरम्परा में संचरित हुई 5. देवनागरी वाचना, (राघवभट्ट, 2006) एवं 6. दाक्षिणात्य (काटयवेम, 1982) वाचना। लेकिन उनमें से कोई भी वाचना का पाठ सर्वसम्मत नहीं हो पाया है, एवमेव इनमें से एक भी वाचना के पाठ को हम सर्वथा मौलिक नहीं मान सकते है। तुलनात्मक परीक्षण से तो यही दिखता है कि ये सभी वाचनायें विभिन्न प्रान्तों में प्रचलित रंगावृत्तियाँ ही होगी। किसी भी नाट्यकृति की जब रचना होती है तब यह एक-कर्तृक रचना ही होती है, किन्तु मंचन के दौरान अलग अलग सूत्रधार अपनी प्रतिभा, रूचि एवं आवश्यकता के अनुसार, तथा समय एवं नट की मर्यादा को मध्ये नजर रखते हुऐ नाट्यकार के द्वारा लिखे गये मौलिक पाठ में कुछ शब्दों का परिवर्तन, दृश्य का स्थलान्तरण, तथा गेयभाग (श्लोकों) एवं गद्य संवादों में प्रक्षेप एवं संक्षेपादि का कार्य करते रहते है। और यह बात अभीज्ञानशाकुन्तल जैसि आदिकाल से लोकप्रिय बनी नाट्यकृति के लिये तो सर्वथा सत्य है।

किन्तु इन पाँच या छह वाचनाओं में संचरित होके हम तक पहुँचे हुए अभिज्ञानशाकुन्तल के वैविध्य-सभर पाठ में से (1) किस वाचना का पाठ प्राचीन या प्राचीनतर है? यह ज्ञातव्य है। (2) यह भी समीक्षणीय है कि कौनसी वाचना से आरम्भ करके, किस क्रम में पाठ-विचलन का सिलसिला आगे बढ़ा है। तथा (3) गवेषणीय बिन्दु यह भी है कि किस वाचना में मौलिक पाठ्यांश अधिक सुरक्षित रहा है, अर्थात किसमें कम से कम परिवर्तन हुए है। इन जिज्ञासाओं में पहली जिज्ञासा का शमन डॉ. दिलीपकुमार काञीलाल (कोलकाता) ने किया है। उनका यह गभीर संशोधन है कि अभिज्ञानशाकुन्तल का जो पाठ बंगाली वाचना में संचरित होके हम तक पहुँचा है व पाठ 11वीं शदी से कश्मीरी परम्परा के अलङ्कारशास्त्रीय ग्रन्थों में उदधृत होता दिखाई पडता है। अत: उपलब्ध पाठपरम्पराओं में से बंगाली वाचना का पाठ ही प्राचीनतर सिद्ध होता है। और डॉ. एस. के. बेलवालकर जी के मत से शकुन्तला का निसर्ग-कन्यात्व यदि कहीं पर भी सिद्ध होता है तो वह काश्मीरी वाचना के पाठ में ही है, अर्थात काश्मीरी वाचना का पाठ सब से अधिक श्रद्धेय है। लेकिन हमनें जो दूसरा प्रश्न उपर ऊठाया है, उस दिशा में शायद ही किसी विद्वान् ने कुछ सोचा होगा।

1-1 उपर्युक्त जिज्ञासाओं के लिए सब से पहेले, मौलिक पाठ्यांश को कैसे ढूँढा जा सकता है? इस पर विचार कर लेना चाहिए। नाटक जैसे अभिनेय काव्य के परम्परागत पाठ में जहाँ पर भी विवादाग्रस्त एवं द्विधाजनक पाठ मिलते है, वहाँ मूलगामी पाठ को ढूँढने के लिए कुछ मानदण्ड सर्वसम्मत हो सकते है: जैस कि, 1. नाट्यप्रयोग में समय की पा-बन्धी होने से, जहाँ पर भी वर्णनात्मक श्लोक मिलते है वहाँ पर यह देखा जाना चाहिये कि इस वर्णन की प्रासङ्गिकता है या नहीं। तथा ऐसे वर्णनों में दीर्धसूत्रिता एवं पुनरूक्ति है या नहीं ? क्योंकि नाटक में इन सब का अभाव होना बहुत जरूरी है। अत: पाण्डुलिपियों में संचरित हुए नाट्यकृति के पाठ में जहाँ पर भी पुनरूक्ति आती है या प्रासङ्गिकता का अभाव दिखता है वह स्थान प्रक्षेपयुक्त हो सकता है। एवमेव, 2. नाट्यकृति के मंचन के दौरान कोई नट की स्मृति-मर्यादा से विवश हो कर सूत्रधारों ने कदाचित् ऐसे वर्णनात्मक अंशों में कुछ कटौती भी की हो सकती है। अत: उदाहरण के रूप में ऐसे संक्षेप एवं प्रक्षेप को पहेचानने के लिए समुच्चयार्थक "अपि च" का जहाँ प्रयोग हुआ हो ऐसे स्थान की परीक्षा की जाती है।

1-2 उदाहरण के रूप में अभिज्ञानशाकुन्तल के प्रथमांक में आये हुए भ्रमरबाधा प्रसंग को हम लेते है: यहाँ पर बंगाली एवं मैथिली वाचना में "अपि च" से सम्बद्ध किये गये दो श्लोक है।

"**राजा** - (सस्पृहम्)

यतो यत: षट्चरणोऽभिवर्तते, ततस्तत: प्रेरितवामलोचना।
विवर्तितभ्रूरियमद्य शिक्षते भयादकामापि
हि दृष्टिविभ्रमम् ।। 1-22 ।।

Publications of the NMM

TATTVABODHA

Compilation of the proceedings of public lectures delivered under Tattvabodha Series

TATTVABODHA VOLUME–I
Editor: Sudha Gopalakrishnan
Publishers: National Mission for Manuscripts, New Delhi and Munshiram Manoharlal Publishers Pvt. Ltd, New Delhi
Pages: 164
Price: ₹ 325/-

TATTVABODHA VOLUME–II
Editor: Kalyan Kumar Chakravarty
Publishers: National Mission for Manuscripts, New Delhi and Munshiram Manoharlal Publishers Pvt. Ltd. New Delhi
Pages: 194
Price: ₹ 350/-

TATTVABODHA VOL–III
Editor: Prof. Dipti S. Tripathi
Publishers: National Mission for Manuscripts, New Delhi and Dev Books, New Delhi
Pages: 240
Price: ₹ 350/-

TATTVABODHA VOLUME–IV
Editor: Prof. Dipti S. Tripathi
Publishers: National Mission for Manuscripts, New Delhi and D. K. Printworld (P.) Ltd.
Pages: 251
Price: ₹ 400/-

SAMRAKSHIKA

Compilation of the proceedings of the seminars on conservation of manuscripts

SAMRAKSHIKA VOLUME–I
Indigenous Methods of Manuscript Preservation
Editor: Sudha Gopalakrishnan
Volume Editor: Anupam Sah
Publishers: National Mission for Manuscripts, New Delhi and D. K. Printworld (P) Ltd., New Delhi
Pages: 253
Price: ₹ 350/-

SAMRAKSHIKA VOLUME–II
Rare Support Materials for Manuscripts and their Conservation
Editor: Shri K. K. Gupta
Publishers: National Mission for Manuscripts, New Delhi and Dev Books, New Delhi
Pages: 102
Price: ₹ 200/-

Kriti Rakshana

Kriti Rakshana

SAMIKSHIKA

Compilation of the proceedings of the seminars organised on different topics

SAMIKSHIKA VOLUME–I
Buddhist Literary Heritage in India
Editor: Prof. Ratna Basu
Publishers: National Mission for Manuscripts, New Delhi and Munshiram Manoharlal Publishers Pvt. Ltd., New Delhi
Pages: 158
Price: ₹ 325/-

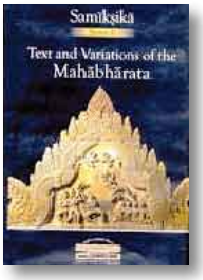

SAMIKSHIKA VOLUME-II
Text and Variantions of the Mahābhārata
Editor: Kalyan Kumar Chakravarty
Publishers: National Mission for Manuscripts, New Delhi and Munsiram Manoharlal Publishers (P) Ltd., New Delhi
Pages: 335
Price: ₹ 500/-

SAMIKSHIKA VOLUME-III
Natyashastra and the Indian Dramatic Tradition
Edited by: Radhavallabh Tripathi
General Editor: Dipti S. Tripathi
Publishers: National Mission for Manuscripts, New Delhi and Dev Publishers & Distributors, New Delhi
Pages: 344
Price: ₹ 450/-

SAMIKSHIKA VOLUME-IV
Indian Textual Heritage (Persian, Arabic and Urdu)
Editor: Prof. Chander Shekhar
Publishers: National Mission for Manuscripts, New Delhi and Dilli Kitab Ghar, Delhi
Pages: 400
Price: ₹ 350/-

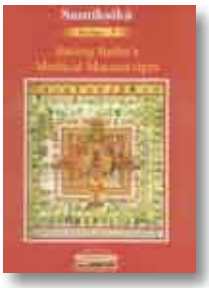

SAMIKSHIKA VOLUME-V
Saving India's Medical Manuscripts
Edited by: G.G. Gangadharan
General Editor: Dipti S. Tripathi
Publishers: National Mission for Manuscripts, New Delhi and Dev Publishers & Distributors, New Delhi
Pages: 260
Price: ₹ 350/-

KRITIBODHA

Critical editions of manuscripts

KRITIBODHA VOLUME-I
Vādhūla Gṛhyāgamavṛttirahasyam of Nārāyaṇa Miśra
Critically edited by: Braj Bihari Chaubey
General editor: Sudha Gopalakrishnan
Publishers: National Mission for Manuscripts, New Delhi and D. K. Printworld (P) Ltd., New Delhi
Pages: 472
Price: ₹ 550/-

KRITIBODHA VOLUME-II
Śrauta Prayogakḷpti of Ācārya Śivaśroṇa
Editor: Prof. Braj Bihari Chaubey
Publishers: National Mission for Manuscripts, New Delhi and D. K. Printworld (P) Ltd., New Delhi
Pages: 200
Price: ₹ 250/-

KRITIBODHA VOLUME-III
Tattvānusandhanam (A Compendium of Advaita Philosophy) by Sri MahadevanandaSarasvati
Consultant Editor: T. V. Sathyanarayana
General Editor: Prof. Dipti S. Tripathi
Publishers: National Mission for Manuscripts, New Delhi and New Bharatiya Book Corporation, Delhi
Pages: 90
Price: ₹ 150/-

PRAKASHIKA

Printed editions of rare and unpublished manuscripts

PRAKASHIKA VOLUME-I
Diwanzadah
Edited by: Prof. Abdul Haq
General Editor: Prof. Dipti S. Tripathi
Publishers: National Mission for Manuscripts, New Delhi and Delhi Kitab Ghar, Delhi
Pages: 454
Price: ₹ 250/-

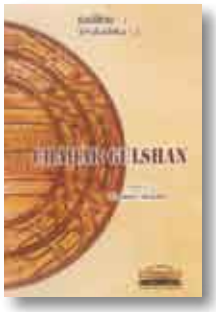

PRAKASHIKA VOLUME-II
Chahar Gulshan (An eighteenh century gazetteer of Mughal India)
Edited and Annotated by: Chander Shekhar
General Editor: Dipti S. Tripathi
Publishers: National Mission for Manuscripts, New Delhi and Dilli Kitab Ghar, Delhi
Pages: 473
Price: ₹ 250/-

PRAKASHIKA VOLUME – III
Ākhyātavāda and Naňvāda along with Ṭippanī
Critically Edited by Sanjit Kumar Sadhukhan
General Editor: Prof. Dipti S. Tripathi
Publishers: National Mission for Manuscripts, New Delhi and Dev Publishers & Distributers, New Delhi
Pages: 127
Price: ₹ 250/-

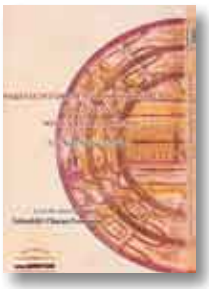

PRAKASHIKA VOLUME-IV
Pakṣtācintāmaṇi and Sāmānyanirukti of Gaṅgeśa with Kaṇādaṭippani (Text and English Translation)
Critically Edited by Subuddhi Charan Goswami
General Editor: Prof. Dipti S. Tripathi
Publishers: National Mission for Manuscripts, New Delhi and Dev Publishers & Distributors
Pages: 113
Price: ₹ 225

PRAKASHIKA VOLUME-V
Vādhulagṛhyasutṛam with Vṛtti
Critically Edited by: Braj Bihari Chaubey
General Editor: Dipti S. Tripathi
Publishers: National Mission for Manuscripts, New Delhi and New Bharatiya Book Corporation, New Delhi
Pages: 262
Price: ₹ 350/-

PRAKASHIKA VOLUME-VII
Rāgārṇavam (with Rāgacandrikā Vyākhyā)
Edited and commented by Bhagavatsharan Shukla
General Editor: Prof. Dipti S. Tripathi
Publishers: National Mission for Manuscripts, New Delhi and D. K. Printworld (P.) Ltd.
Pages: 251
Price: ₹ 300/-

Kriti Rakshana

Kriti Rakshana

PRAKASHIKA VOLUME-VIII
Kalikālasarvajña Ācārya Hemcandra's Laghvarhannīti (Text with commentary, variant readings, Hindi translation and appendices)
Editor: Ashok Kumar Singh
General Editor: Prof. Dipti S. Tripathi
Publishers: National Mission for Manuscripts, New Delhi and New Bharatiya Book Corporation, New Delhi
Pages: 314
Price: ₹ 350/-

PRAKASHIKA VOLUME–IX (1st Part)
Mir'at-ullstelah of Anand Ram Mukhlis
Edited by Chander Shekhar, Hamidreza Ghelichkani & Houman Yousefdahi
General Editor: Prof. Dipti S. Tripathi
Publishers: National Mission for Manuscripts, New Delhi and DilliKitabGhar, Delhi
Pages: 566
Price: ₹ 400/-

PRAKASHIKA VOLUME–IX (2nd Part)
Mir'at-ullstelah of Anand Ram Mukhlis
Edited by Chander Shekhar, Hamidreza Ghelichkani & Houman Yousefdahi
General Editor: Prof. Dipti S. Tripathi
Publishers: National Mission for Manuscripts, New Delhi and Dilli Kitab Ghar, Delhi
Pages: 403
Price: ₹ 400/-

CATALOGUES

THE WORD IS SACRED SACRED IS THE WORD
The Indian Manuscript Tradition by B. N. Goswamy
Publishers: National Mission for Manuscripts, New Delhi and Niyogi Offset Pvt. Ltd., New Delhi
Pages: 248
Price: ₹ 1850/-

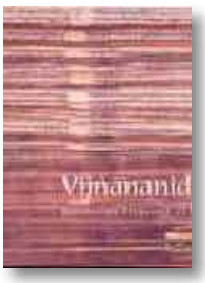

VIJÑĀNANIDHI: MANUSCRIPT TREASURES OF INDIA
Published by: National Mission for Manuscripts, New Delhi
Pages: 144

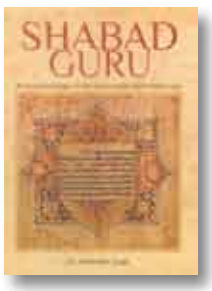

SHABAD GURU
Illustrated Catalogue of Rare Guru Granth Sahib Manuscripts
Editor: Dr. Mohinder Singh
Publishers: National Mission for Manuscripts, New Delhi and National Institute of Punjab Studies, New Delhi
Pages: 193

अपि च - (सासूयमिव)

चलापाङ्गां दृष्टिं स्पृशसि बहुशो वेपथुमतीं
रहस्याख्यायीव स्वनसि मृदु कर्णान्तिकचरः।
करं व्याधुन्वत्याः पिबसि रतिसर्वस्वम् अधरं
वयं तत्त्वान्वेषान् मधुकर, हतास्त्वं खलु कृति ॥ 1-23 ॥

इन शब्दों में वर्णित भ्रमरबाधा प्रसंग में पहले (22) श्लोक में भ्रमर से संत्रस्त हो रही शकुन्तला के चकित नेत्रों में जो दृष्टिविभ्रम का सौन्दर्य आकारित हो रहा है उसका चित्र खिंचा गया है[1]। इस लिए वहाँ नायक सस्पृह देख रहा है ऐसी रंगसूचना दी गई है तत्पश्चात दूसरे (23) श्लोक में शकुन्तला के मुखारविन्द पर घुम रहे ईर्ष्याजनक भ्रमर का चित्र खिंचा गया है[2]। यहाँ एक ही दृश्य की द्विपार्श्वी रमणीयता को दो अलग अलग श्लोक में वर्णित करने की आवश्यकता है। अतः कालिदास ने समुच्चयार्थक "अपि च" का प्रयोग करके उन दोनों को परस्पर बांधे है। यहाँ दोनों श्लोकों में दृष्टिकोणों का ही भेद होने से उसमें पुनरुक्ति का कोई अवकाश ही नहीं है। अतः यह मूलगामी पाठ हो सकता है, जो काश्मीरी, बंगाली एवं मैथिली वाचना में संचरित होता रहा है। लेकिन समय-मर्यादा की बाधा से पीडित कुछ सूत्रधारों ने उन दोनों में से पहलेवाले श्लोक को हटा दिया है। परिणामतः देवनागरी एवं दाक्षिणात्य वाचना की पाठयपरम्परा ने केवल चलापाङ्गा-वाला श्लोक ही सुरक्षित रखा है।

2-1 शाकुन्तल के मौलिक पाठ में प्रक्षेप एवं लीला निरन्तर चल रही होगी उनमें कोई शक नहीं। लेकिन इस लीला का पौर्वापर्य जानना मूश्कील होते हुए भी पाठालोचना करने के लिए अनिवार्य भी है। इस दिशा में संशोधन करने के लिए चतुर्थाङ्क उपयुक्त स्थान है। चतुर्थाङ्क में श्लोक-संख्या 21 से 26 तक मिलती है। जैसे कि, मैथिली वाचना में 26 श्लोक है, तथा बंगाली वाचना में 24 श्लोक है। किन्तु राघवभट्ट की देवनागरी वाचना में केवल 21 श्लोक प्राप्त होते है। इस तरह की कम-ज्यादा श्लोक संख्या ही हमें विचार करने के लिए प्रेरित करती है कि किस वाचना में मौलिक पाठ सुरक्षित रहा होगा, या किस वाचना में प्रथम बार प्रक्षेप हुआ होगा, अथवा किस वाचना के पाठ में कब संक्षेप हुआ होगा?। बंगाली वाचना के पाठ में, चतुर्थाङ्क के आरम्भ में प्रभात वेला का आकलन करने के लिए पर्णकुटिर से बहार निकला शिष्य तिन चार श्लोकों का गान करता है, वह निम्न स्वरूप के है:-

यात्येकतोऽस्तशिखरं पतिरोषधीनाम्,
आविष्कृतोऽरूणपुरःसर एकतोऽर्कः।
तेजोद्वयस्य युगपद् व्यसनोदयाभ्यां,
लोको नियम्यत इवैष दशान्तरेषु[3] ॥ 4-2 ॥

अपि च-

अन्तर्हिते शशिनि सैव कुमुद्वती में
दृष्टिं न नन्दयति संस्मरणीयशोभा।
इष्टप्रवासजनितान्यबलाजनेन
दुःखानि नूनमतिमात्रदुरूद्वहानि[4] ॥ 4-3 ॥

अपि च-

कर्कन्धूनामुपरि तुहिनं रञ्जयत्यग्रसन्ध्या
दार्भं मुञ्चत्युटजपटलं वीतनिद्रो मयूरः।
वेदिप्रान्तात् खुरविलिखिताद् उत्थितश्चैष सद्यः,
पश्चादुच्चैर्भवति हरिणः स्वाङ्गम् आयच्छमानः[5] ॥ 4-4 ॥

अपि च-

पादन्यासं क्षितिधरगुरोर्मूर्ध्नि कृत्वा सुमेरोः
क्रान्तं येन क्षयिततमसा मध्यमं धाम विष्णोः।
सोऽयं चन्द्रः पतति गगनादल्पशेषैर्मयूखैर्,
अत्यारूढिर्भवति महताम् अप्यपभ्रंशनिष्ठा[6] ॥ 4-5 ॥
(द्विवेदी, 2008)

बंगाली वाचना के पूर्वनिर्दिष्ट चार श्लोको का एक साथ में होना सम्भव नहीं लगता हैं, क्योंकि नाटक जैसी समय की पाबन्दी को स्वीकारनेवाली कला में इतना लम्बा वर्णन असह्य होता है। एवमेव, यहाँ तो कण्वाश्रम का शिष्य केवल प्रभातकाल का आकलन करने के लिए इन श्लोकों का गान कर रहा है। इस सन्दर्भ को देखते हुए यहाँ चार चार श्लोकों को होना सम्भवित नहीं लगता हैं। मतलब कि यहाँ बंगाली वाचना पाठ मौलिकता के नझदीक नहीं लगता है। अतः अन्य वाचनाओं में इस स्थान की क्या स्थिति है? इसको ध्यान में लेकर पाठालोचना शुरू करनी होगी। जैसे कि - उपयुक्त चार श्लोकों में से पहले दो

1. यह श्लोक वंशस्थविल वृत्त में लिखा गया है।
2. यह श्लोक शिखरिणी वृत्त में लिखा गया है।

3. (**अनुवाद**) एक ओर चन्द्रमण्डल अस्तशिखर को पहुँच रहा है और एक ओर अरूण को आगे किये उदित हो रहा है सूर्य । दो तेज और दोनों का एक साथ व्यसन (अस्त) तथा अभ्युदय। इनसे लोक को शिक्षा मिलती है अपनी दशा बदलने की।।- कालिदासग्रन्थावली, (भाग -2), अनु. पं. रेवाप्रसाद द्विवेदीजी, कालीदास अकादेमी, उज्जयिनी, 2008, पृ. 399.
4. (**अनुवाद**) चन्द्र डूब गया तो वही कुमुद्वती अब आँखों को आनन्दित नहीं कर रहीं है। इष्ट (प्रिय) के प्रवास से उत्पन्न दुःख अबलाओं को अत्यन्त दुःसह होते है।।- कालिदासग्रन्थावली, (भाग-2), अनु. पं. रेवाप्रसाद द्विवेदीजी, कालिदास अकादेमी, अज्जयिनी, 2008, पृ. 399.
5. (**अनुवाद**) और देखो बैरों के ऊपर पडी ओस को उषाकाल रंग रहा है, जागा मोर लकड़ी के उटज पटल को छोड़ रहा है, ये हरिण शिशु चारों ओर उपवन में निर्भय चर रहे है, क्योकि इनमें दर्भाङ्कुर हटा दिए गए है ।। कालिदासग्रन्थावली (भाग-2), अनु. पं. रेवाप्रसाद द्विवेदीजी, कालीदास अकादेमी, उज्जयिनी, 2008, पृ. 398.
6. (**अनुवाद**) जिस (चन्द्र) ने पर्वतराज सुमेरू के सिर पर पादन्यास पर अँधियारी दूर करते हुए भगवान् विष्णु के दूसरे धाम पर विचरण किया था वही चन्द्र अब बहुत कम बची किरणों के साथ आकाश से गिर रहा है। अत्यारूढि बडों को भी पतन का सुख दिखलाती है। कालिदासग्रन्थावली, (भाग-2), अनु. पं. रेवाप्रसाद द्विवेदीजी, कालिदास अकादेमी, उज्जयिनी, 2008, पृ. 398.

"याति" एवं "अन्तर्हिते" श्लोकों को देवनागारी और दक्षिणात्य वाचनाओं ने मान्य किये है। तथा काश्मीरी वाचना ने केवल "कर्कन्धूनाम्" और "पादन्यास" को ही मान्य किये है। अर्थात इन दोनों वाचनाओं में केवल दो दो श्लोको को ही स्थान मिल पाया है। परन्तु दोनो वाचनाओं ने जिन दो श्लोकों को मान्य रखे है वे दोनो भिन्न भिन्न श्लोक है। अलबत्ता चार श्लोको को स्वीकारनेवाली बंगाली परम्परा की अपेक्षा से केवल दो ही श्लोकों को मान्य करनेवाली वाचनाओं को ही बेहतर माननी होगी। अत: यहाँ सोचना होगा कि केवल दो दो श्लोकों को प्रस्तुत करनेवाली देवनागारी एवं काश्मीरी जैसी वाचनाओं में से किस का पाठ मौलिक, अर्थात कालिदास-प्रणीत हो सकता है?।

2-2 देवनागरी एवं दाक्षिणात्य वाचनाओं में जिन दो श्लोकों को ("याति" एवं "अन्तर्हिते") स्थान मिला है, उन दोनों में शकुन्तला के भावि दुर्दैव का सूचन रखा गया है। किन्तु किसी भी नाट्यकृति में विचारों की पुनरूक्ति करने में समय की हानि होती है, जो नाट्यकला में असह्य मानी गई है। दूसरा, इन दोनों श्लोकों को "अपि च" निपात से बांधे गये है, लेकिन समुच्चयार्थक "अपि च" के विनियोग का पूर्वोक्त स्वारस्य यहाँ घटित नहीं होता है। तीसरा, इन श्लोकों में जो वसन्ततिलका छन्द का विनियोग हुआ है, वह विरह, करूणता, दु:ख भरे भावों की अभिव्यक्ति के लिए संगत नहीं बैठता है। इन श्लोको में तो शकुन्तला के भावि दु:ख का सूचन किया जा रहा है, अत: यहा वसन्ततिलका जैसे छन्द: को देख कर भी यह सूचित होता है कि कालिदास-प्रणीत नहीं हो सकते है।

इसी तरह से, भूतकाल में आचार्य शरदा रञ्जन राय (राय, 1908) ने भी दोनों को प्रक्षिप्त मानना चाहिए ऐसी बात कही थी। उन्होंने कहा कि पूर्वार्ध में जो वर्णन है वह प्राभातिक समय का आकलन करने के लिए उपयुक्त नहीं है। यदि सूर्य आविष्कृत हो ही गया है तो फिर "होमबेला हो गई है, चलो गुरू को उसका निवेदन किया जाय" ऐसा कहना सुसंगत नहीं है। यदि इस श्लोक में "आविष्कृतारूण" ऐसे सामासिक शब्द को पाठान्तर के रूप में लिया जाय तो व्यसनोदय के यौगपद्य का कथन दूषित होता है। तथा इस श्लोक में प्रक्रमभङ्ग दोष भी हो रहा है, इस लिए दोनों श्लोकों का मौलिक होना सम्भव नहीं है।

दूसरे पक्ष में, याने काश्मीरी वाचनानुसारी पाठ में अन्य दो (कर्कन्धूनाम् एवं पादन्यासं) श्लोकों का स्वीकार हुआ है वहाँ सब से पहेले यह कहना होगा कि ब्राह्मी लिपि से नीकली हुई अन्यान्य लिपियों में शरदा लिपि का क्रम बंगालीलिपी की अपेक्षा से पहेले है। अत: उस शारदालिपि में संचरित हुई पाठपरम्परा को अधिक श्रद्धेय एवं प्राचीनतम माननी होगी। फिर भी इसकी मौलिकता के विषय में तर्कनिष्ठ अन्य विचार भी करना होगा। देवनागरी की तुलना में देखा जाय तो काश्मीरी वाचना वाले दोनों श्लोको में मन्दाक्रान्ता छन्द का प्रयोग हुआ है, जो उस श्लोक में प्रकट किये गये शकुन्तला के दु:ख भरे भावि दिवसों के साथ सुसंगत है। दूसरा, इन दोनों श्लोकों को "अपि च" निपात से बांधे गये है, क्योंकि इन दो श्लोकों के निरूप्यमाण विषयवस्तु में पुनरूक्ति नहीं है। कर्कन्धूनाम् वाले श्लोक की प्रासंगिकता जाँची जाय तो (=प्रभात के समय का आकलन करना) स्वयं स्पष्ट है, तथा पादन्यासं क्षितिधरगुरो: वाले दुसरे श्लोक से प्राकरणिक अर्थ (=शकुन्तला की भावि अवदशा) का सूचन हो रहा है, (और उसके साथ अनसूया की उक्ति का अनुसन्धान भी हो जाता है)। परिणामत: यहाँ इन दोनों श्लोकों के बीच में जो "अपि च" का विनियोग हुआ है, वह भी समुच्चयार्थक के रूप में सुसंगत बैठता है। कण्वाश्रम के शिष्य ने पहले श्लोक में, यज्ञवेदी के प्राङ्गण में अपने सम्मुख जो चहलपहल हो रही है उसका चित्र खिंचा है। दूसरे श्लोक में शिष्य ने उर्ध्व दृष्टि करके देखा तो चन्द्रमा का पतन हो रहा है, उसका वर्णन किया है। कालिदास किसी भी दृश्य की द्विपार्श्वी रमणीयता को वर्णित करने के लिए "अपि च" का प्रयोग करते है, अर्थात ऐसे स्थान पर ही समुच्चयार्थक अपि च के प्रयोग का यथार्थ्य घटित होता है। इसी दृष्टि से, काश्मीरी वाचना केन (कर्कन्धूनाम् एवं पादन्यासं) दोनों श्लोकों की ही मौलिकता सिद्ध होती है।

2-3 पूर्वोक्त चार श्लोकों में से (देवनागरी एवं दाक्षिणात्य वाचना में जिन दोनों को मान्यता मिली है वे) दोनों श्लोक प्रक्षिप्त होने के प्रमाण मिल रहे है और अन्य दो श्लोकों (जिनको काश्मीरी वाचना में मान्यता मिली है उन) का मौलिक होना प्रतीत होता है तो अब प्रश्न होगा कि यह बात कैसे बनी कि बंगाली वाचना में चारों श्लोक एक स्थान पर हाजिर हो गये?। इस प्रश्न का उत्तर बंगाली वाचना में से नही मिल सकता है। उसके लिए तो इस समग्र चर्चा में अवशिष्ट रही मैथिली वाचना की पाठपरम्परा को देखनी होगी। वहाँ पर भी यद्यपि उपर्युक्त चारों श्लोकों का स्वीकार हुआ है, किन्तु उनमें इन चारों श्लोकों का उपस्थिति-क्रम भिन्न है, वह ध्यातव्य है। मैथिली वाचना में 1. कर्कन्धूनाम्, 2. पादन्यासं, 3. याति, और 4. अन्तर्हिते - इस क्रम में चारों श्लोकों को अवतारित किये है। यह क्रमभेद इस बात का द्योतक है कि काश्मीरी वाचना के जिन दो श्लोकों में मौलिकता झलक रही है उसका पहला स्थान मैथिली परम्परा में क्रमांक की दृष्टि से भी पहेला बना रहा है। और फिर कालान्तर में, उसके पीछे दो नये श्लोकों का प्रक्षेप हुआ होगा। यहाँ याति और अन्तर्हित श्लोकों को कब किसने प्रक्षिप्त किया होगा वह तो हम नही जान सकते है, लेकिन शारदा-लिपि की पाठपरम्परा में मौलिक पाठ का संचरण होने के बाद, द्वितीय स्तर में मैथिली में उसका अनुसरण होने का प्रमाण यही है कि काश्मीरी पाठ का श्लोक क्रम उसमें यथावत् रहा दिखता है। और सामान्यतया प्रक्षिप्तांश का क्रम दूसरा ही रहता है, उस दृष्टि से प्रक्षिप्त सिद्ध हो रहे दो श्लोकों का क्रम तीसरे-चौथे क्रम पर रखा गया है। तथा "अपि च" जैसे समुच्चयार्थक निपात का सहारा लेकर ऐसा प्रक्षेप करना

आसान भी होता है। पाठसंचरण के दौरान "अपि च" से प्रक्षेपों की प्रसूति करने की प्रवृत्ति एक आम बात है।

मैथिली पाठपरम्परा में दो नये श्लोकों का प्रक्षेप होने के बाद, जब शङ्कर ने इन दोनों श्लोकों के ऊपर रसचन्द्रिका जैसी अतिमहत्त्वपूर्ण टीका लिखी होगी तब इन दोनों श्लोकों का महत्त्व बढ़ गया होगा। शङ्कर ने याति वाले श्लोक का ध्वन्यर्थ निकालते हुए लिखा है कि "एतावता पतितः सौभाग्यगर्विताया: शकुन्तलाया अग्रे दुःख भविष्यतीति सूचितम्।" तथा अन्तर्हिते श्लोक का व्यंग्यार्थ बताते हुए लिखा कि "अन्यापदेशेन शकुन्तला झटिति दुष्मन्तचित्ताहरणरूपेणात्यारोहेण विरहाम्बुधौ पतिष्यतीति सूचितम्।" इस टीका ने प्रक्षिप्त श्लोकों में छीपी हुई चमत्कृति जरूर उद्घाटित की है, लेकिन उसमें पुनरूक्ति हो रही है एवं उसमें प्रासंगिक सन्दर्भ (प्रभातकाल का बोध) छुट गया है - यह बात शङ्कर ने नहीं पहेचानी। परिणामतः तीसरे स्तर पर, शङ्कर ने जिसका ध्वन्यर्थ दिखाया था इन दोनों (प्रक्षिप्त श्लोकों) को बंगाली वाचना में प्राथम्य मिल गया। अर्थात शाकुन्तल की पाठपरम्परा में दों मौलिक श्लोकों के साथ दो नये श्लोकों का प्रक्षेप होने के बाद, बंगाली वाचना में इन चारों को क्रम उलटा-पुलटा किया गया होगा। जिसमें याति एवं अन्तर्हित को पहेला-दूसरा स्थान मिला और कर्कन्धूनाम् एवं पादन्यासं को तीसरा-चौथा स्थान दिया गया। (मैथिली पाठ से विपरित क्रम जो बंगाली पाठ में दृश्यमान हो रहा है उससे ही पाठविचलन का पौर्वापर्य निर्धारित हो रहा है।) चतुर्थ स्तर पर, जब मूल पाठ में कटौती करके इस नाटक के संक्षेपीकरण का कार्य हाथ पर लिया गया होगा तब, (बंगाली वाचना में) तीसरे एवं चौथे क्रम पर जो श्लोक थे उसको देवनागरी एवं दाक्षिणात्य वाचनाओं में से हटाया गया होगा। लेकिन हकीकत ऐसी सिद्ध हो रही है कि जिन दो श्लोकों को देवनागरी एवं दाक्षिणात्य वाचनाओं में से हटाये गये वे ही केवल मौलिक होने का दावा कर सकते है।

इस तरह से प्रातःकाल का वर्णन करने के बहाने चतुर्थाङ्क के प्रारम्भ में "अपि च" निपातों से जुडी चार श्लोकों वाली जो शृङ्खला मिल रही है उसका तुलनात्मक दृष्टि से अभ्यास करने से शाकुन्तल की पाठपरम्परा में जो विचलन हुआ है उसका पौर्वापर्य निर्धारित किया जा सकता है। यह एक स्थान ऐसा पहेलीबार ध्यान में आ रहा है कि जिसके सहारे हम शाकुन्तल के मौलिक पाठ के विचलन एवं संचरण के क्रम को समझ सकते है।

3-1 यहाँ चतुर्थाङ्क से ही एक दूसरा उदाहरण लेंगे जिसमें भी काश्मीरी एवं मैथिली वाचनाओं को पूर्वोक्त पौर्वापर्य घटित होता है। शकुन्तला पतिगृह की ओर प्रस्थान कर रही है तब बंगाली वाचनानुसारी चतुर्थाङ्क के पाठ में इस तरह का संवाद है:- शकुन्तला कण्व को पूछती है कि मैं पति के घर जा रही हूँ, लेकिन पिताजी आपका विरह कैसे सह पाऊगी? तब पिता कण्व श्लोक 4-22 से उत्तर देते है कि कुलीन व्यक्ति के घर में गृहिणी पद प्राप्त होने के बाद तुँ बहुविध कार्यकलाप में व्यस्त हो जायेगी और तेरे अङ्क में पुत्र का आगमन हो जाने के बाद तो सुख ही सुख होने से तुँ मेरे विरह से उत्पन्न होनेवाले दुःख को भूल जायेगी। इतना सुनने के बाद शकुन्तला पिता के चरणों में प्रणाम करती है (ऐसी रंगसूचना है)। अर्थात बंगाली में कण्व एक ही श्लोक बोलता है। किन्तु इस सन्दर्भ का काश्मीरी एवं मैथिली पाठ निम्नोक्त है, जिसमें कण्व दो श्लोक बोलते है:-

शकुन्तला- कधं तादस्स अङ्कादों परिब्भट्टा मलअपव्वदुम्मूलिदा विअ चन्दणलदा देसन्तरे जीविदं धारइस्सं।

(इति रोदिति) (तातस्याङ्कात् परिभ्रष्टा मलयपवनोन्मूलिता इव चन्दनलता देशान्तरे जीविते जीवितं धारयिष्ये।।)

कण्वः- वत्से, किमेवं कातरासि।
अभिजनवतो भर्तुःश्लाघ्ये स्थिता गृहिणीपदे
विभवगुरूभिः कृत्यैरस्य प्रतिक्षणमाकुला।
तनयमचिरात् प्राचीवार्कं प्रसूय व पावनं
मम विरहजं न त्वं वत्से शुचं गणयिष्यसि ।। 4-22 ।।

अपि च, इदमवधारय-

यदा शरीरस्य शरीरिणश्च पृथक्त्वमेकान्तत एव भावि।
आहार्ययोगेन वियुज्यमानः परेण को
भवेद्विषादि ।। 4-23 ।।

शकुन्तला - (पितुः पादयोः पतित्वा) ताद वन्दामि।

यहाँ श्लोक 22 के नीचे, "अपि च" निपात से बांधा गया एक श्लोक - 23 दिख रहा है, जो केवल काश्मीरी एवं मैथिली वाचना के पाठ में ही उपलब्ध होता है। बंगाली, देवनागरी और दाक्षिणात्य वाचनाओं में वह नहीं मिलता है। (तथा डॉ. एस. के. बेलवालकर जी के द्वारा सम्पादित अभिज्ञानशाकुन्तल में भी वह श्लोक नहीं मिलता है) किन्तु ऑक्सफर्ड लाईब्रेरी में सुरक्षित दो शारदा पाण्डुलिपियों में यह श्लोक "अपि च" निपात से अवतारित किया गया है। अतः विचारणीय है कि क्या दूसरा श्लोक "अपि च" के विनियोग से काश्मीरी-मैथिली में प्रक्षिप्त किया गया होगा? या फिर वह मौलिक होते हुए भी बंगाली, देवनागरी एवं दाक्षिणात्य वाचनाओं में से उसे हटाया गया है?। यहाँ पूर्वधारणा के रूप में मान लिया जाय कि मूल पाठ में पहेलेवाला एक ही श्लोक रचा गया था। अब, पहेले श्लोक 22 में शकुन्तला को पिता की याद नहीं आयेगी उसके बहुत प्रतीतिकारक कारण पेश किये गये है। फिर भी यह चिन्ता तो है ही कि पुत्री को ससुराल में कितना भी सुख मील जाय तो भी क्या वह अपने पिता को भूला सकती है? सब का अनुभवजन्य उत्तर यही है कि ढेर सारे सुख में भी पुत्री अपने पिता को कदापि नहीं भूला सकती है। अतः प्रश्न होगा कि क्रान्तद्रष्टा महाकवि ने यहाँ सर्वजनानुभव-विरूद्ध क्यों लिखा है । क्या सचमुच में शकुन्तला अपने भावि जीवन में सुखातिशय आने पर भी पिता कण्व को भूल जायेगी? वृद्ध पिता की कोई चिन्ता उसे नहीं सताती रहेगी? इस

प्रश्न का एक ही उत्तर सभी रसिकों के मन में होगा कि शकुन्तला अपने पिता को हरगिझ नहीं भूल सकती है। यह बात कण्व भी जानते होंगे, अत: यहाँ उनको कुछ अधिक कहने की आवश्यकता होगी। यदि मूल पाठ में पहेलेवाला एक ही श्लोक था ऐसी पूर्वधारणा को छोड़के, काश्मीरी और मैथिली वाचना में आया हुआ दूसरा श्लोक मूल में था ऐसा स्वीकारते है तभी उपर्युक्त क्षति का विसर्जन होता है।

प्रस्तुत चर्चा में पहेले कहा गया है कि इस नाट्यकृति में एक श्लोक के बाद "अपि च" से अवतारित दूसरे श्लोक में प्रवर्तमान दृश्य या विचार का दूसरा पहलु रखा जाता है। ऐसा होना अनिवार्य है, क्योंकि समुच्चयार्थक "अपि च" का प्रयोग तभी होता है कि जब प्रस्तुत विचार का दूसरा पहलु भी सम्मलित करना हो। इस दृष्टि से सोचा जायेगा तो पहेले श्लोक में शकुन्तला को ससुराल में सुख मिलने पर वह पिता को भूल जायेगी ऐसा कहा जाता हैं। तत्पश्चात् दूसरे ही श्लोक में कहा जाता है कि फिर भी इन ऐहिक सुखों के बीच में भी शकुन्तला के हृदयाकाश में पिता के वार्धक्य को लेकर सदैव चिन्ता विद्यमान रहनेवाली है। तो उसका निरसन करने के लिए क्रान्तद्रष्टा कालिदास ने ऋषि कण्व से निम्नोक्त दूसरा श्लोक कहलाया है:-

अपि चेदमवधारय

यदा शरीरस्य शरीरिणश्च पृथक्त्वमेकान्तत एव भावि।
आहार्ययोगेन वियुज्यमान: परेण को नाम
भवेद् विषादि ।। 4-23 ।।

शकुन्तला-तात वन्दामि। (पितु: पादयो: पतति)

अर्थात कण्व ने शकुन्तला को आश्वासन देते हुए "अपि च" से अवतारित 23 वें श्लोक से यह भी कह दिया है कि शरीर और शरीरी का पृथकत्व अवश्यम्भावि है। जैसे कोई नट अपने पहेने हुए मुकुटादि व्यवहार्य चीजों का त्याग करते समय दु:खी नहीं होता, (वैसे ही कल कण्वमुनि के देहावसान की खबर मिले तो भी शकुन्तला को दु:खी नहीं होना चाहिए।)।। यहाँ "अपि च" के प्रयोग का याथार्थ्य पूर्ण रूप में सिद्ध होता है। कण्व ने अपनी पुत्री को दो बातें कहे की उसे दोनों दृष्टि से स्वस्थ मन:स्थितिवाली बनाई है। एक तो ससुराल में निरतिशय सुख एवं नयी जिम्मेवारियाँ को लेकर पिता की याद नहीं आयेगी, और दूसरा पिता का शरीर व्यवहार्य चीज रूप है, जो एक दिन नष्ट होनेवाला है तो उसकी चिन्ता करना जरूरी नहीं है। आश्रम में पली ऋषिकन्या के लिए आरण्यक पिता का यह औपनिषदिक दर्शन इस स्थान पर एकदम सुसंगत प्रतीत होता है। और इस दृष्टि से देखा जायेगा तो यहाँ "अपि च" का विनियोग भी समुच्चयार्थक के रूप में सर्वथा चरितार्थ हो रहा है। अत: काश्मीरी और मैथिली वाचना में दृश्यमान यह दूसरा श्लोक मौलिक होने में संदेह नहीं रहता है।

उपर्युक्त दो श्लोकों वाला काश्मीरी पाठ जो पहेले मैथिली पाठ में संक्रान्त हुआ होगा वह वहाँ पर सुरक्षित रहा है। लेकिन तीसरे स्तर पर बंगाली एवं देवनागरी तथा दाक्षिणात्य वाचनाओं में से "अपि च" से अवतारित दूसरा श्लोक हटाया गया होगा। इस प्रकार के संक्षिप्तीकरण से चतुर्थाङ्क का एक विशेष सौन्दर्य, जो दार्शनिक पिता के वचनों में झलक रहा है उससे हम वंचित रह जाते है। कालिदास ने अपने अन्य काव्यों मे भी औपनिषदिक दर्शन व्यक्त किया है और इस नाटक के अन्तिम भरत वाक्य में भी उन्होंने लिखा है कि "सरस्वती श्रुतिमहती/श्रुतिमहतां महीयताम्।" इसको देखते हुए भी उपर्युक्त श्लोक मौलिक दिख रहा है।

उपसंहार:- अभिज्ञानशाकुन्तल की पाँचों वाचनाओं में जो पाठ प्रवहमान हुआ मिल रहा है, उनमें से किसी में भी पूर्ण रूप से कालिदास-प्रणीत हो ऐसा मौलिक पाठ दिखता नहीं है। दूसरी ओर, नाटक जैसी और वह भी अभिज्ञानशाकुन्तल जैसी आदिकाल से लोकप्रिय बनी सर्वश्रेष्ठ नाट्यकृति का पाठ मंचन के दौरान विचलित होना अवश्यम्भावि था। इस लिए साहित्यरसिकों में कवि-प्रणीत मूल पाठ का सौन्दर्य पुन: संप्राप्त करने की इच्छा रहती ही है। किन्तु कालिदास इतने सुदूर अतीत में बैठे है कि वह कार्य इतना आसान भी नहीं है। अभी तक शाकुन्तल कें पाठविचलन का पौर्वापर्य जानने के लिए निर्णयात्मक स्थान किसी के ध्यान में नहीं आया था। लेकिन प्रस्तुत आलेख में हमने जो चतुर्थाङ्क के आरम्भिक चारों श्लोकों को लेकर इस पौर्वापर्य को निर्धारित करने का प्रयास किया है वह विद्वत्सम्मत हो सकता है तो शाकुन्तल के उपलब्ध पाठों में निहित प्रक्षेप एवं संक्षेप की विकराल समस्या के दुर्ग में प्रविष्ट होने का मार्ग प्रशस्त होगा।

Bibliography :

Pischel, Richard (1922).
Kalidas's S'akuntala. second edition, Cambridge:
Harvard University Press

कांजीलाल, दिलीपकुमार (1980), *अभिज्ञानशाकुन्तलम्*, संस्कृत
कॉलेज, 1 बंकीम चेटर्जी स्ट्रीट, कोलकाता - 700073

काटयवेम (1982), *अभिज्ञानशाकुन्तलम्*, हैदराबाद:
आन्ध्रप्रदेश संस्कृत अकादेमी

द्विवेदी, रेवाप्रसाद (2008), *कालीदास-ग्रन्थावली (भाग-2)*
उज्जयिनी: कालिदास अकादेमी

नवकिशोरकर (1960), *अभिज्ञानशाकुन्तलम्*,
वाराणसी: चौखम्बा संस्कृत सिरीझ.

बेलवालकर, ए. (1965), *अभिज्ञानशाकुन्तलम्*, दिल्ली: साहित्य अकादेमी

रमानाथ झा. (1957), *अभिज्ञानशकुन्तलम्*
(शंकर-नरहरिकृतयोष्टीकयो: समेतम्), दरभंगा: मिथिला विद्यापीठ

राघवभट्ट, (2006), *अभिज्ञानशाकुन्तलम्*, दिल्ली:
राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान

राय, शरदा रंजन, (1908), *अभिज्ञानशाकुन्तलम्*, कोलकाता.

प्रो० वसन्तकुमार म. भट्ट
निदेशक, भाषा-साहित्य भवन, गुजरात विश्वविद्यालय,
अहमदाबाद-380009

Case Study:

Problems and Process of Conservation of *Diwan-i-Hafiz*

Prof. S.M. Azizuddin Husain

Rampur Raza Library, housed in the Hamid Manzil, Rampur Fort (UP) was established by Nawab Faizullah Khan, a remarkably gifted and far-sighted ruler. The library is a rich storehouse of more than 50,000 books and approximately 15,000 manuscripts in Arabic, Urdu, Persian and Turkish. Many of them are invaluable treasures of Indian cultural heritage. In its collection, the library has 150 illustrated manuscripts and Mughal miniature paintings dating from 16th to 18th century A.D. It has eleven descriptive catalogues of manuscripts in various languages and subjects. The library now has the status of a national institution and functions under the Ministry of Culture, Govt. of India and it also functions as one of the MCCs of the NMM.

Among the illustrated manuscripts in the collection of the Rampur Raza Library, *Diwan–i–Hafiz* is an important and rare manuscript, which is undoubtedly one of the jewels in the crown of Rampur Raza Library. The manuscript is written on thick decorated Kashmiri paper and embellished with gold spray with exquisitely fine wide border and different colour tones. It contains images of wild life, for example, Chinese dragon, tiger, elephant, monkey, fox, dog and different kinds of birds in various postures and floral designs of Mughal style painted in gold.

Diwan-i-Hafiz
Size- 26.7cm x 19.5cm
Total pages: 404
Total folios: 202
Language: Persian
Period – 1575 – 80 A.D.

Shamsuddin Muhammad, known as Hafiz, lived in the south Persian city of Shiraz and received patronage from the Inju and Muzaffarid rulers of that city. Volumes of his poetry were popularly used for fortune-telling (for an explanation of how it will take its shape). He is credited with perfecting the ghazal or ode form in poetry and the authorized version of his *diwan (Diwan–i–Hafiz)* includes some 573 *ghazaliyat.*

Diwan-i-Hafiz manuscript was purchased by Nawab Muhammad Kalbe Ali Khan of Rampur, from Muhammad Akram, the grandson of Hafiz Khurshid Khushnavis Lakhnavi on January 2, 1857.

The manuscript was copied in 1575A.D. in Khurasan and illustrated in 1585-95, probably in Lahore, during the reign of Mughal Emperor Akbar.

The Manuscript contains 11 masterpieces of miniature paintings. A brief description of the paintings is given hereunder:

1. **Painting on page no. 19** – It appears that *Diwan-i-Hafiz* is being presented to Emperor Akbar or Akbar is asking for fortune telling. Saghar Nizami is of the view that - Abul Fazl, Faizi, and Hakeem Abul Fateh Gilani are sitting at Akbar's court. Painted by Kanha.
2. **Painting on page no. 30 –** The dervishes doing *sama* in the *Khanqah* overpowered by the ecstasy of devotional Music.
3. **Painting on page no. 74 –** A semi naked young man walking in a rocky valley.

4. **Painting on page no. 116 –** A prince sitting in his garden with noblemen and listening music. Painted by Farrukh Chela.
5. **Painting on page no. 147 –** A prince riding with his retinue in a rocky valley. Painted by Manohar.
6. **Painting on page no. 177 –** An old man watching flock of his sheep amidst rocks. Painted by Farrukh Chela.
7. **Painting on page no. 211 –** An interesting scene of Turkish Hammam, people getting massaged and taking bath.
8. **Painting on page no. 247 –** A prince with noblemen enjoying music and wine at the terrace of his palace. Painted by Narsingh.
9. **Painting on page no. 284 –** Sinking of a boat in troubled water.
10. **Painting on page no. 314 –** A prince sitting in his garden with scholars and musicians, listening recitation of verses.
11. **Painting on page no. 355 –** Two opposing forces charging at each other in a battle field. Painted by Chitr.

Conservation of *Diwan-i-Hafiz*

The folios of the manuscript were in a very bad condition when received for conservation in the laboratory in March 2003. The manuscript was suffering from brittleness, cracking, tears, faulty Indian tissue repairs, deposition of adhesive and acidic paper at guarding side, losses, warping etc. The folios of the manuscript were received in loose form.

Construction of sheets

Text papers are divided by double black lines. The distance between two black lines is 1 mm. This gap is filled with gold paint. The paper is divided in several rectangular shapes with the help of these lines and writing is done within these shapes. Text paper is overlapped with such strips. The strip is also having double black lines at outer edges. Then, there are four lines painted in different colours followed by double black lines and again surrounded by painted lines. These surrounded painted lines are done over outer sheet which is joined with coloured strip (8 mm), which means this strip is acting as intermediary for joining text and outer sheet. The sheets are either in green or brown toned. In some sheets, there is same colour on both sides and in others different colours are used for different sides, e.g. green with green, brown with brown or green with brown colour on the back or vice versa.

Conservation problems

There were three major problems in folios:

.1. **Guarding sides:** The guarding sides of the manuscript had numerous problems, e.g. deposition of thick unknown adhesive, paper strip, cloth strip etc. The combination of these problems caused brittleness and staining in the folios. Handling caused loss of paper and tears. It was observed that the guarding sides received some damages during the separation of sheets from the bound manuscript. Adhesive was very sticky. In due course of time, it turned permanent and brittle because of the blobs of sticky stubborn adhesive.

2. **Tears, losses and flaking:** Tears had occurred mostly along the joining of text papers and colored paper strips. Tears had also taken place along the paint lines, which surrounded the text paper. Due to improper handling, manuscript had suffered this problem. Another reason of tears might be the construction of folios. As different types of papers were used to make one folio, during fluctuations in temperature and humidity, different types of papers reacted differently in terms of contraction and expansion. This uneven contraction and expansion forced these lines broken. Nevertheless, acidic nature of pigment might also be responsible. As the pigment test had not been done, it couldn't be said for sure whether such tears were due to acidic pigments or not. The pigments used in the paintings

were flaking off the surface at many places and small flakes could be seen under the microscope.

3. **Old repairs:** Previously, tears and losses had been repaired with tissue tape, machine made paper, sometimes cello tape, etc. Sometimes, repairs had been done over the writing. In course of time, such repairs had become permanent in terms of reversibility. It was assumed that the adhesive and tape used in repairing made the sheets acidic and brittle because the tape and adhesive had become brittle.

Other problems

Humidity: The primary support material, paper was warped mainly due to humidity which was a common problem in all the folios.

Loss of paper: Biggest reason of losses was mishandling and brittleness of paper. However paper used in the manuscript was not so brittle but during the handling of manuscript, appropriate measures were not taken. Manuscript contained 404 thick pages. Therefore the total weight of the manuscript was very high. In the past the manuscript had been tightly bound and lot of pressure was borne by the folios due to heavy weight and tight binding.

Stains: Different types of stains were noticed. Most common stain was of adhesive. Adhesive stains were found at many places. Some stains were obscuring the writing.

Smudging of ink: Smudging of ink was found in many sheets.

Fading of paper: Fading of paper occurred due to weathering. Since the manuscript was very old, it was obvious that the paper would fade to some extent.

Conservation Treatment given to *Diwan-i-Hafiz* (in Brief)

The conservation treatment of the illustrated manuscript was time consuming as the folios were made of layers of papers of different tones. The objective was to stabilize the folios physically and chemically with minimal intervention. The treatment included: cleaning, consolidation, solvent cleaning, removal of old Indian and brown papers, taking off old adhesive and fragments of old guarding cloth, pulp filling, repairing of damaged edges and corners, mending of separated inlayed portions, mending of small tears and cracks, mending torn portions, compensation of loses with in-fills, guarding side with Nepalese and Japanese tissue, humidifying, flattening without disturbing the consolidated areas and re-toning in-fills.

The principle of manuscript conservation propounds minimum intervention theory. According to this, it is advisable to preserve while leaving intact as many components of the original manuscript as possible, including the binding. But in case of *Diwan-i-Hafiz* the original binding cover was not available. The manuscript was provided with conservation binding. The materials used for binding was of archival quality and acid free.

The conservation work on the manuscript started in March 2003 and finished in August 2006. Due to insufficient Nepalese tissue paper in the lab, the manuscript could not be given guarding and was safely returned in acid free box to the library. Later on, in June 2011 the manuscript again entered the laboratory and was provided guarding of Nepalese tissue paper and handed over to the librarian on 10th September, 2011.

The conservation work and Documentation work were completed by: Mr. Lalit Kumar Pathak (Ex Conservator) and Ms. Sanam Ali Khan (Conservator) Conservation Lab, Rampur Raza Library, Rampur.

Prof. S.M. Azizuddin Husain is Director, Rampur Raza Library, Rampur, U.P.

The Illustrated *Giradhara-Ramayana* Manuscript from Vadodara

Prof. M. L. Wadekar

The *Valmiki-Ramayana* has greatly influenced the Indian society. The poets of all regions have always tried to narrate the *Ramayana* episodes in regional languages with additions, alterations and remodeling the said story with incorporation of numerous social and religious customs and traditions, prevalent in their respective peṛiod. The social significance and impact of the *Ramayana,* influencing the minds of masses is to be found in all centuries. After *Valmiki-Ramayana,* several *Ramayanas, Ananda-Ramayana, Adhyatma-Ramayana, Bhusundi-Ramayana, Tulasikṛta Ramayana, Kṛttivasa-Ramayana, Kamba-Ramayana, Bhavartha-Ramayana* etc. were composed by different poets of India. Giradhara is one of such eighteenth century modern poets of Gujarat, who has written complete *Ramayana* in metrical form in Gujarati. Though he has primarily based his exposition on the *Valmiki-Ramayana, Hanumannataka* and some other *Ramayanas,* he has not followed completely the *Valmiki-Ramayana,* but has made several changes in the exposition and sequence of episodes and added time-honoured social and religious customs and traditions, which prevailed in society of his time. This shows how *Valmiki-Ramayana* has been influencing the society and masses in all times.

Giradhara (*Samvat* 1843 i.e. 1787 A.D.) is one of eighteenth century modern poets of Gujarat (Especially of Vadodara, Masara in Padra District), who has written complete *Ramayana*[1] (seven *kandas,* 299 *adhyayas,* 9551 *Copai* verses) in metrical form in Gujarati. He wrote this *Ramayana* in 1836 A.D., when he was living in Vadodara after 1820 A.D.

Giradhara and life

Giradhara was born in *Dasalada Vanik* caste, in *Samvat* 1843 i.e. 1787 A.D. in Gujarat, especially in Masara village in Padra District. In his later life (after *Samvat* 1876 i.e. 1820 A.D. he also lived in Vadodara.

वैश्य वर्णमां जन्म ज धरियो वीरक्षेत्रमां वासजी;
वणिकज्ञाति दशालाडनी, वैष्णवागिरिधरदासाजी.

उत्तरकांड ११२-४१

His father's name was Garbadadasa, mother's name is not known, while his two sisters were Sada and Kanku. Giradharadasa was the elder brother of them. The name of his preceptor was Purusottamadasa Maharaja, from whom he learnt *Kavyashastra.* In fact, he did not get much learning and was illiterate, but obtained much knowledge of the *Valmiki-Ramayana, Mahabharata, Harivamsa,* Puranas, *especially of Bhagavata, Hanumannataka, Naradapancaratra, Adhyatma-Ramayana* and *Ananda-Ramayana.*

वाल्मीकि रामायणनो अर्थ, मांहे नाटक कृतहनुमंत जी;
ते थकी भाषा ग्रंथ कर्यो छे, लेई दृष्टांत अनंत जी,
पद्मपुराण ने अग्निपुराणनो, मेळव्यो मांहे संबंध जी;
अल्पबुद्धि ते माटे कंई अेक, कर्युंप्राकृत पदबंध जी.

-उत्तरकांड ११२:२५-२८

Giradharadasa gives the exact date and time of completing the composition of the *Ramayana* by him. In *Saka* 1758, *Samvat* 1893 i.e. 1836 A.D., it was *Dhanasankranti, Hemanta Ṛtuin* the month of *Margasirsa, Kṛsnapaska,* ninth lunar day, Sunday and Middle of the day,

1 *Kavi Giradharakrta Ramayana,* Sahitya Sangama, Bavasidi, Gopipura, Surat, Joshi Devadatta, *Kavi Giradhara Jivanaanekavana,* Shri Sayaji Sahityamala no. 359, Oriental Institute, M.S. University of Baroda, Vadodara 1982, *Sri Giradharakrta Ramayana,* Sastu Sahityavardhaka Karyalaya, Ahmedabad and Mumbai, 1950.

Citra Naksatra, Sukra yoga, Vanijakarana, Kumbha Lagna and *Abhijit Muhurta.*

शाके सत्तरसें अठ्ठावन, धन संक्रान्ति त्यांहे जी;

संवत् अष्टादशत्रिनेवुं, हेमन्त ऋतुनी मांहे जी.

मार्गशीर्ष कृष्ण पक्ष नौमी तिथि, रविवासर दिन मध्य जी;

चित्रा नक्षत्र योग शुक्रमां, वणिज करण समर्ध जी.

कुम्भ लग्न अभिजित् मुहूरतमां, ग्रंथ पूरण थयोअेह जी:

–उत्तरकांड ११२.३१३–३३

Besides Gujarati – his mother tongue, he had good knowledge of Hindi and Sanskrit, He left this mortal world at the age of 65, on the eleventh day of month of *Bhadrapada* in *Samvat* 1908 (1852 A.D.). It is reported that his narration of the *Ramayana* had greatly influenced the masses and even Muslims listened to and sung the *Giradhaṛakṛta Ramayana.* Premananda, who was also born in Vadodara and has composed several Pauranic *Akhyanas*, flourished between 1645 A.D.–1712 A.D. He was his predecessor *Akhyanakara* from Vadodara. He composed a work, named *Ramayajna* on the *Ramayana.*

Giradhara's works

He has composed fifteen poetic works in Gujarati. They are: 1. *Danalila*, 2. *Srikṛsnajanmavarnanam*, 3. *Radhakṛsnanorasa*, 4. *Prahladacaritra*, 5. *Grisma rtunilila*, 6. *Tulasivivaha*, 7. *Rajasuyayajna*, 8. *Ramayana*, 9. *Kṛsnacaritra-Gokulalila*, 10. *Mathuralila*, 11. *Dvarakalila*, 12. *Janmastaminosohelo*, 13. *Narasimhacaturdasini vadhai*, 14. *Radhika viharadvadasamasa* and 15. many *Padas.* The *Ramayana* composed by him contains seven *kandas*, 299 *adhyayas*, 9551 *Copai* verses. Thus it is the only metrical *Ramayana*, composed in Gujarati, in complete form, containing *all Kandas* of the *Ramayana.*

Illustrations from Giradhara Ramayana manuscripts, preserved at M.S. University library, Vadodara, Gujarat

Manuscripts

It is quite significant that manuscripts of different *kandas* of this *Ramayana*, composed by him are in the manuscript collection of the Oriental Institute. It is further remarkable that the *Ayodhyakanda* and *Aranyakand* part of the said manuscripts, contains 25 + 23 = 48 colourful pictures, illustrating the incidents of *Ramayana.* The manuscript accession no. is 14117. It is a paper manuscript in *Devanagari* script but in Gujarati language. It has 112 folios (*Ayodhyakanda*) up to folio 58, written in both the sides of the folios. There are 48 colourful pictures, interspersed in the explosion at several places but they are not counted and numbered in the folios. It is received as a gift from Dr. U.P. Shah, the then Deputy Director of the Oriental Institute. Its size is 15.2 cms X 28.3 cms. The red pigment is used for *Dandas* and important words and colophons. From the post-colophon entries of the *Ayodhyakanda* and the *Aranyakanda,* the definite information about the scribe, his date and place of residence is found. It is as follows:

संवत् १८९४ शके १७५९ ना फागणसुद १५ मंगळवासरे अध्यारु नरोत्तम विद्यारामेन लेखक लेखकपाठक शुभं भवतु। अयोध्याकांडम् पृ. ५८

संवत् १८९४ शके १७६० ना चैत्रमासे कृष्णपक्षे तिथि षष्ठी चन्द्रवासरे अध्यारु नरोत्तम विद्यारामेन लेखक वडोदरा सेर मध्ये ठेकाणुं सुलतानपरामां अध्यारुनी पोलमां ज्ञाति भ्रांमण अवदीच सोहोस्रअे पुस्तक मेहेता लालाभाई नाहोनाभाईनुं छे वांचवा तथा उतारवा लेई जाय ने ओलवे तेहेने श्रीपरमेश्वर पुछे। श्रीरामचन्द्राय नमः।

All the Manuscripts of different parts of the *Giradhara-Ramayana* are written by a scribe named Narottama Adhyaru, living at Adharu's lane, Sulatanpura, Vadodara. The scribe was *Audicyasahasra* Brahmin (*Sukla-Yajurveda-Madhyandina Shakha*). The Manuscript of *Ayodhyakanda,* with pictures is written and painted in 1838 A.D. The copying and painting of *Ayodhyakanda* was complete on Tuesday the *Paurnima* day in the month of *Phalguna* in the year *Samvat* 1894 and *Saka* 1759 i.e. 1838 A.D. and the *Aranyakanda* was completely copied and painted on the Monday the sixth lunar day of black fortnight in the month of *Caitra* in the year *Samvat* 1894 and *Saka* 1760 i.e. 1838 A.D. This shows that the entre Aranyakanda was copied and painted within the time period of 36 days. The author had composed the *Gujarati-Ramayana* in 1836 A.D. This shows that Giradhara's *Ramayana* was very popular in those days in Vadodara and only within two years of its composition, the scribe prepared it along with forty eight pictures. The manuscript belongs to Lalabhai Nanabhai Mehta. "If anybody takes it away for reading or copying, but does not return, he has to answer in the court of the Lord". The scribe-painter also seems to be devotee and admirer of Giradhara, the poet. He has not only prepared illustrations on different incidents, but also carefully painted them as per the divergences in the Giradhara's exposition of events. For example: 1. Manthara accusing Rama, 2. Vikalpa-Kali-Manthara-Kalinga fruits, 3. Mother of Guhak, washing feet of Rama 4. Gandharva, in the form of crow, troubling Sita, 5. Rama hurling *darbha* and his surrendering, 6. Bharata decides to enter the fire. The pictures are painted with different colours and are beautiful; sketches of mountains, trees and bird are admirable too.

Pictures in the Manuscripts

The pictures in the manuscript are related to the different episodes in the *Ayodhyakanda* and *Aranyakanda.*

Conclusion

Thus this *Ramayana*-work from Vadodara, by a Gujarati poet as well as its very rare and valuable illustrated manuscript by a scribe from Vadodara – both these facts are quite unique and noteworthy from the point of view of our cultural heritage and precious manuscript wealth.

Prof. Dr. M. L. Wadekar *is Officiating Director, Oriental Institute, M. S. University of Baroda, Gujarat*

Towards Devising a Saner Manuscripts Policy

Dr. Shayesta Khan

Though India is the nation with largest manuscript collection in the world, most of these manuscripts are unexplored. There is a huge treasure of knowledge, which lies hidden in manuscripts. Reclaiming this rich heritage is the responsibility primarily of scholars and librarians. It will not sound absurd to assert that, while the scholars rarely get time to explore the old remains, the librarians have both the duty and the opportunity to bring to light such hidden treasures.

Considering from pragmatic attitude, all the manuscripts, simply by virtue of being found in hand-written form are not necessarily equally valuable. It is up to the scholar-librarian to judge the worth of a particular manuscript. After due consideration, the authority at Maulana Azad Library, Aligarh Muslim University decided to carry out an experiment. The processes and outcomes of this experiment are noted with an expectation that the repositories, conservationists and librarians would be benefited from this experience which is described briefly hereunder.

As the first step it was decided to present those select rarities which had certain intrinsic value for the world of scholarship. The process however appeared not so easy.

Firstly, we started with the premise that it would be better if we could compile a unified catalogue of all the manuscripts irrespective of their significance, and place it at the disposal and discretion of the readers to pass value-judgment. On a second thought we however, preferred to save time, space, money and energy of the users, as it would have been not only time-consuming, but also less useful. This is because there are thousands of copies of, for example, *Gulistan & Bustan,* thousands of *Diwan-i-Hafiz & Masnavi Maulana Rumi,* innumerable copies of *Qasa'id-i-Urfi, Ma-muqiman, Kareema, Khaliq-bari, Mulla Jalal, Mulla Hasan, Sullam, Musallam* and similar others which were much in demand and use in good old days. Transcribing the manuscripts, for the libraries and the bibliophiles, on demand or on their own, was very much in vogue during the pre-modern days and it was a means of earning livelihood for many a professional called scribes or *kātib* during the medieval period. That was, in fact, the only mode of duplication and circulation, or in other words, 'publishing' a work, before the beginning of the era of printing press.

Hence it became obvious to us that it was of little use and of much less advantage, to take all these manuscripts into account. It was therefore, advisable in the first instance, to pay attention only to the rare ones.

A question however arose as to the criteria of calling a manuscript a 'rare' one. For the purpose, we decided to be on the safe side and to depend upon our predecessors who had been experts in the field, and had declared some manuscripts more precious than others, on reasonable grounds. The renowned bibliophiles like Maulvi Hafiz Nazeer Ahmad (Kolkata) & Maulvi Hashim Nadvi (Hyderabad) became our primary sources for covering the rarities of the sub-continent, in general. Their declarations were obviously the first criterion for us. Our own humble efforts following their footsteps followed next.

Being on a firm ground now, it became possible for us to call the spade a spade. It would not be, therefore, out of place to mention here straightaway the ingredients of significant or rare manuscripts. These are:

(i) Intrinsic Value:
  (a) Subject
  (b) How far authoritative in its concerned discipline.
(ii) Uniqueness.
(iii) Scarcity of copies.
(iv) Transcription/correction made by the author; author's autograph copy.
(v) Age of the manuscript.
(vi) Contemporaneity/proximity to the author's age.
(vii) Autographs/seals of eminent persons.
(viii) Importance of the scribe.
(ix) Calligraphy: manuscript as piece of art.
(x) Illumination/illustrations.
(xi) Completeness of the manuscript.

Towards a better preservation of our precious heritage lying dormant in many a burial ground called the libraries, what is more important is to formulate a national policy for the utilization of the preserved knowledge which, may be planned in three stages, namely:

(i) To make a simple handlist of the entire collection of the manuscripts preserved in the library.
(ii) To shortlist the full-length handlist and to make, out of it, a judicious selection of the most significant rare manuscripts.
(iii) To get edited and translated those manuscripts which have an intrinsic value by involving language experts and faculty-members: from the faculty of science for science manuscripts, similarly from the faculty of arts for manuscripts on humanities.

Some Research-oriented agencies, interested in unearthing and disseminating knowledge contained in the buried heritage, are explored for funding, and for providing some fellowships for the scheme of editing and/or translating the valuable manuscripts.

Fortunately and wisely, our savants have taken right step in establishing a National Mission for Manuscripts which is taking admirable steps in this regard.

One step more is needed: that of setting a pattern for the (ii) of the above-mentioned three levels.

To illustrate the various categories of significant manuscripts, carrying ingredients that make a manuscript valuable enough to be edited and/or translated, the following examples may prove relevant:

For the **intrinsic value and uniqueness**, one may cite, in example, bringing out a critical edition and/translation of the illustrated manuscript of Tarikh-e Khandan-e Timuriya (History of the House of Tamerlane). Its authenticity has been attested by the *builder of* Tajmahal, which, besides being a unique manuscript on a glorious period of India's History, that of Akbar the Great and his adventurous predecessors, is also a fine piece of art of painting meticulously performed by the master artists of the age.

This history of the Timurids compiled by a committee of editors under the chairmanship of Abul Fazl constituted by the imperial orders, is preserved in Khuda Bukhsh Library (Patna). It has become more precious because of containing more than a hundred pieces of painting done by the master artists of the day which includes Mukund, Basawan, Nand Gawalyari, Manohar, Mulla Shah Mohammad, Haider Kashmiri, Paramjeev Gujarati, Aasi, Jagannath, Kanha, Narayan and Miskeen. Besides containing the master pieces of the painting, jointly by Indian artists or individually by Indian and Iranian Artists of the Court of Akbar, the manuscript becomes all the more significant as being the only copy available in the world. As to the authenticity of the manuscript, a copy of the testimonial by Shajahan in his own handwriting is enclosed.

As for another ingredient qualifying a manuscript to be called rare, the scarcity of copies, we may cite the example of *Nahjul Balaghah* (ascribed to Ali bin Abi Talib, the 4th Caliph/the first *Imam*, copied 132 years after the death of its compiler), of which not more than four manuscripts of olden times are extant; one, preserved in Aligarh, dated 538 A.H. may be cited in example.

As for a manuscript **transcribed by some distinguished person, a noble, a princess, a king or an eminent scribe**, the Diwan of the great Indo-Iranian poet Sa'ib may be cited as an example. A collection of verses of Sa'ib, preserved in Maulana Azad Library, AMU is transcribed by Sa'ib's disciple Arif Tabrezi. It is surprising to note that the writings of both the persons, Sa'ib & Arif, are so much akin to each other that one may be taken for the other. The Aligarh manuscript becomes all the more important as it contains marginal notes by the author, Sa'ib himself, denoting the fact that after Arif Tabrezi finished his script, the finished product was gone through by the poet himself who made due corrections and additions. In the editing of Saib's verses this manuscript may also serve as the basic version of great poetic work.

As for the **Age of the manuscript** (as per the saying, Old is gold), a copy of the Quran written in most ancient Arabic script, Koofi, may be cited in example (It is ascribed to Hazrat Ali Ibn-e Abi Talib). By age it is definitely some1400 years old. After the first three hijri centuries, the Koofi script did not remain in vogue. Similarly, the writing material, parchment was also replaced by paper. It is preserved in the University Library of AMU, Maulana Azad Library.

An example of a manuscript, bearing **autographs** of eminent persons, is the manuscript of *Diwan-i-Hafiz.* It was consulted for taking omens by the Mughal Royalty, Humayun & Jahangir, as testified by no less a person than Prince Dara Shikoh himself. It bears the notings in the handwritings of Humayun and Jahangir.

A manuscript becomes valuable if the subject is biography or history and the manuscript is contemporaneous. **Contemporaneity** makes it rare. In example thereof, we may cite History of Chait Singh, the last Maharaja of Benares, annexation whereof was witnessed by a contemporary administrator Ali Ibrahim who has left a record of the event, now preserved in India Office Library.

*For copies bearing **seals** of **eminent persons***, we may cite, for example the seal of Akbar and his Librarian 'the great poet Faizi, (elder brother of historian Abul Fazl,) found on *Tareekh-e Guzida* (the manuscript of University Library, AMU). Yet another example is a copy of *Jahangirnamah* containing writings of royalty as also seals of Qutub Shahi kings of Golcunda (Patna Manuscript).

Shahnamah, is the world-famous versified history of Persian kings composed by Firdausi, the court Poet of Mahmood of Ghazni. Firdausi has been translated into several leading languages of the world and is as famous as their Shakespeare or our Kalidas. A manuscript of the same work, from Abdussalam Collection of Aligarh Muslim University Library, considered to be highly valuable in view of its exquisite paintings, may be reproduced as a piece of Art.

A fly leaf from the Turkish Diwan, is a very rare item, composed by King Husain of Herat, the grandson of one of the grandsons of Timur (Tamerlane) and a cousin to the great scholar-king Bayasunghar. It is a very interesting case of heritage scattered, partly preserved in one library & partly at some other place (to be traced). The title page of the Diwan along with a few ghazals, on the verso of the title page, is preserved in Aligarh Muslim University Library, while the rest of the Diwan may be unearthed somewhere at some point of time, in near or distant future, let us hope. In that hope we are giving due honour to the surviving, highly valuable leaf, containing a very beautiful handwritten note of Jahangir (otherwise known for his cursive handwriting), Jahangir as an experienced custodian/librarian of valuables, always recorded on his books the classification mark along with some other relevant notes. The classification by Jahangir-the-librarian reads as *'khassa-e awwal'* (A-one category). His note reads: *"Allaho Akbar Panjumazar San ekjuloosdakhil-e kitabkhana-e eenniyazmand-e dargah-e ilaahishud. Harrarahoo Nooruddin Jahangir, bin Akbar Badshah, san 1014."* (Allah is Great. (On) the fifth of Azar (name of the month) of the first regnal year, (this book) entered in the library of this obedient servant of the Sublime Entity. This is recorded by Nooruddin Jahangir, the son of Akbar Badshah, dated 1014 A.H.). Quite a few seals of some nobles are also found on the same page.

The manuscript of *Yusuf Zulaikha,* composed by the celebrated Persian Poet Jami (1414–1492 A.D./817–898 A.H.) is a master - piece of calligraphic art of Sultan Husain, son of Jamshed-al-Haravi who transcribed in 963 A.H. at Bukhara this lyrical version of the Biblical story of Joseph during his sojourn in Pharaoh's Egypt.

A copy of the Quran preserved in Salar Jung Museum, Hyderabad, transcribed by the master Artist Yaqoot al-Musta'simi, considered to be the best of the calligraphers in the world of Islam, is a superb piece of art. The work in itself, deserves to be reproduced in facsimile for its beautiful transcription by the greatest master of calligraphic art. It becomes all the more important as it contains writings of Jahangir and Shahjahan, stating the fact that *"Jannat Makaani* (Humayun) had gifted the manuscript to Khwaja Hasan Ju-e-baari from whom it was taken away by Imam Quli Khan, who gave it to his younger brother Nazr Mohammad Khan in the year 10 of Juloos. After the conquest of Balkh, it fell into the hands of Abbas Mirza", Shahjahan wrote. Earlier Jahangir had written that very fact that, this copy was transcribed by the jewel among the Kaatibs, Khwaja Yaqoot Musta'simi. The writing of Jahangir is dated 12 *amardaad*, the first year of juloos equivalent to 27 Jamadi-us-sani 1014 A.H., when the manuscript "entered in the royal Library". In his second writing Jahangir gave his presentation note as "In the name of great God, it is presented to the leading Sufi Hasan Khwaja on one *Shahriwar* (name of the month), *das juloosmutabiq Ramazanul Mubarak* as our gift. Harrarahoo Nooruddin Jahangir". (the blessed Ramazan of the 10th regnal year, 1024 A.H., as our gift (harrarahoo=Written/recorded by Nooruddin Jahangir).

The page also carries seals of the Golcunda kings, contemporaries to the Great Mughals.

Kareema, ascribed to the great Sa'di transcribed by a master artist Badr Ali, declared to be the magnum opus of his art, preserved in Aligarh, may be reproduced, in a critical edition. This is because, though not an authentic composition of Sa'di, the simple fact that for centuries it has been ascribed to the Great Sa'di (and is in common use, so much so that copies of the manuscript are found in as many numbers as any other most popular work of Persian Literature) makes the poem almost as valuable as his *Gulistan and Bustan*.

The manuscript is in blue (sapphire) and gold colours and may be reproduced as a piece of art besides being the most popular of the Persian works through the ages.

Of the nine Pearls (*navratn*) of Akbar the great, Faizi the elder brother of 'prime minister' Abul Fazl, was a great poet, in fact the poet laureate of Akbar, who has left behind him a grand translation of *Mahabharat*. Fortunately the core-composition of *his Mahabharat* called Bhagwat Geeta, containing the discourses between Lord Krishna and Arjun, is preserved in Maulana Azad library of Aligarh Muslim University. Faizi died in 1595 A.D./1004 which means Geeta's translation was finished by Faizi, before that date. The Aligarh manuscript written in beautiful nasta'leeq, well decorated in blue & gold colours (frontice piece) is a precious gift by Justice Sir Shah Sulaiman (Vice Chancellor of Aligarh Muslim University from 1936–1939). It will be worthwhile to reproduce it in a critical edition.

Shrimadbhagwad Geeta is also translated summarily by another *Navratna* of Akbar, the legendary wise adviser to the emperor, Raja Birbal. His translation is in popular parlance of the day in beautiful *Shikasta amez nastaleeq* script. Beerbal is mostly represented in folk literature of those days as combining wisdom with humour, sometimes satire as well.

On the evolution of the Perso – Arabic Art of calligraphy, someone may like to work on the specimen by master artists. These are available in various collections which may be compiled and annotated. Right from Princess Jahanara to Sarabh Sukh Diwana, Sultan Husain Mash'hadi, & King Bahadur Shah Zafar, a few samples are enclosed.

These manuscripts may be cited by way of example for the purpose of preferential editing.

Dr. Shayesta Khan is Librarian, Maulana Azad Library, Aligarh Muslim University, Aligarh

Institution in Focus

Kuppuswami Shastri Research Institute, Chennai

Dr. J. Lalitha

Kuppuswami Shastri Research Institute was founded in March 1944 to perpetuate the memory of the great saint Prof. Sastri. The venture started under the Chairmanship of Dr. A. Lakshmanaswami Mudaliar, the then Vice-Chancellor of the Madras University, with active cooperation from his friends, students and renowned scholars. It was formally inaugurated on 22nd April 1945 by Sri S.V. Ramamurthy, I.C.S., and Adviser to the Governor of Madras Presidency. Dr. V. Raghavan Sanskrit scholar of international repute was the founder-secretary and mainstay of the Institute.

The history of this institution weaves itself seamlessly into the ancestry and history of the notable city of India – Chennai. It was born during the Second World War and like the world after the War, passed through trouble and roller coaster run through the times. The salient features of the institute may be summarized as under:

- The institution has completed more than 70 years since its inception.
- It is one of the integrated research institutions which combine teaching, research, Vedic training and publishing.
- It is home to some of the finest scholars and leaders in literature, philosophy and language. Renowned personalities like Honourable V.S. Srinivasa Sastriar, Dr. Sir. S. Radhakrishnan, Sir C.P. Ramaswamy Iyer, Sri S. Sathyamurthy, Prof. M. Hiriyanna, Dr. C. Kunhan Raja, Sri S. Vaiyapuri Pillai, Sri K. Balasubramanialyer and Dr. A. Lakshmanaswami Mudaliar were actively associated with the institute as president, secretary or member.
- It is a revered and respected institution globally as the repository of rare and sacred books, magazines and works and lineage of outstanding guides and research coordinators.
- It is authorized to enroll students from abroad for doctoral and post-doctoral research through USEFI and AIIS.
- It is affiliated to the University of Madras for M.Phil and Ph.D. in Sanskrit and Indological studies.

Kuppuswami Shastri Research Institute, Chennai

Kuppuswami Shastri Research Institute has a library with rich collection of books and manuscripts. The uniqueness of the library is that it preserves the precious personal collections of great visionaries such as Dr. S. Radhakrishnan, Prof. Hiriyanna, Dr. V. Raghavan and others. The library has a collection of nearly 60,000 books authored by great and popular writers on variety of Sanskrit and Indological subjects like dance and music, epigraphy, ethics, law, language and literature, philosophy and Ayurveda. These books are in different languages like Sanskrit, Tamil,

Telugu, Kannada, Malayalam, English, German and French. Besides books, the library has a rich collection of the back issues of journals and other periodicals. The collection has received and continuing to receive generous donations of books from different individuals and institutions.

Manuscripts: Kuppuswami Shastri Research Institute has nearly 2000 noteworthy palm-leaf manuscripts written in Grantha, Malayalam, Telugu, Tamil, Nandinagari and Tihilari scripts. These manuscripts contain texts related to Vedas, epics, Srauta, dharmasutras, philosophy, literature, etc. Regarding the manuscripts available in the custody of the institute, special mention may be made of manuscripts written in Manipravala style. The library also holds the photostat copies of the manuscripts on Tala presented by Dr. Robert E. Brown, San Diego State University, USA.

Journals: The library of the institute receives journals on exchange basis from Indian and foreign institutions/ universities. Besides these, the library has back issues of periodicals and journals.

Preservation of manuscripts: The manuscript collection has been systematically preserved by adopting periodical manual cleaning. The manuscripts are kept separately in an air conditioned stack room. Recently the library has adopted a new system called Photolam. Following this system 700 books have been restored to their original shape.

Human resources: Kuppuswami Shastri Research Institute's library is a closed access system with its own special classification of subjects as it is a special library dealing with books, which are mainly on Sanskrit and Indological studies. Library staffs are trained in maintenance and preservation adopting the new techniques. The academic staff of the institute help the readers and scholars in understanding the texts and suggest books for further study.

Focus on digitization of manuscripts and rare books: Realising the importance of the collection, the institute is trying to digitize the old books (70- 100 years old) and manuscripts. Under the Millennium Project envisaged by the former President Dr. A.P.J. Abdul Kalam, Tirumala Tirupati Devasthanam has digitalized nearly 3000 books published before 1950 on various subjects. 80% of the catalogue of books has been computerized and made available for the users.

Conservation activity: In collaboration with the Govt. Museum, Chennai, Kuppuswami Shastri Research Institute conducted a 3-day workshop on "Preventive Conservation of Manuscripts" from Aug.30 to Sept.1, 2006. It was well attended by the staff, students from Institute of Indian Medicine (Siddha), Chennai, and Tamil University, Thanjavur.

Services:

1. Reprographic services and online services are provided to the scholars and institutions
2. 60% of the catalogue can be accessed through the Website: www.ksrisanskrit.in.
3. Separate reading room for researchers for research purpose.
4. Extensive research materials including special encyclopedias, descriptive catalogues of manuscripts of various libraries all over the world and general reference materials are available in the library.
5. Library is open from 10.00 a.m. to 5.00 p.m. on all days except second Saturdays and Sundays and government holidays.
6. Members: Enrollment as patrons, fellows, life and reader membership
7. Students, research scholars and professors from all over India as well as scholars from foreign universities regularly use the library for research purpose.

Dr. J. Lalitha is Librarian, Kuppuswami Shastri Research Institute, Chennai

دیوان حافظ

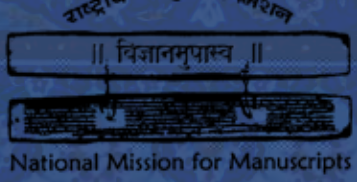

राष्ट्रीय पाण्डुलिपि मिशन

॥ विज्ञानमुपास्व ॥

National Mission for Manuscripts